॥ श्री श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

परमार्थ-पथ

• निर्देश •

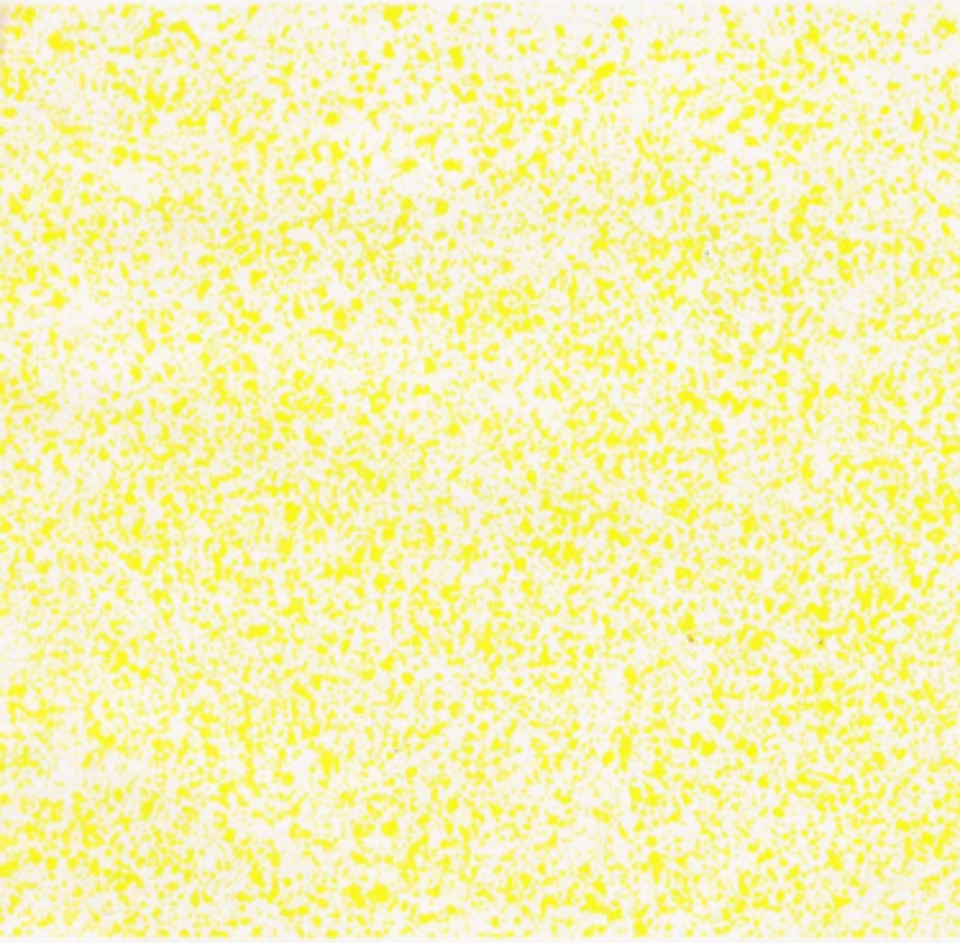

—स्वामी भक्तिसुन्दर गोविन्द

❀ श्रीगुरु गौरांगौ विजयतेतराम् ❀

परमार्थ पथ निर्देश

श्रीचैतन्यसारस्वत मठ नवद्वीप के संस्थापकाचार्य

अनन्त श्री विभूषित श्रीभक्तिरक्षक श्रीधरदेव गोस्वामी महाराज

के प्रियतमपार्षद तत्कर्तृक मनोनीत एवं स्थलाभिषिक्त

सेवाइत'-सभापति आचार्य ॐ विष्णुपाद

श्रीमद्भक्तिसुन्दर गोविन्ददेव गोस्वामी

कर्तृक

श्रील श्रीधर स्वामी सेवाश्रम

दसबिसा, पोः गोवर्धन (मथुरा)

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी

श्रीपूर्णानन्द ब्रह्मचारी
कृते श्रील श्रीधर स्वामी सेवाश्रम
श्रीचैतन्य सारस्वत मठ
दसबिसा, गोवर्धन (मथुरा)

अनुवादक : डॉ शैलेन्द्र नाथ पाण्डेय
वृन्दावन.

प्रथम संस्करण : १९९३/१००० प्रतियां

तिथि : १४ नवम्बर ९३ श्रीगिरिराज पूजा

मुद्रक : श्रीहरिनाम प्रेस वृन्दावन

हमारा मुख्यालय एवं मन्दिर

श्रीचैतन्य सारस्वत मठ

कोलर गंज, पोस्ट-नवद्वीप जिला-नदिया, पश्चिम बंगाल,
पिन–७४१३०२ (भारत) (टेलि० नवद्वीप ८५)

विश्व में हमारे केन्द्र

श्रील श्रीधर स्वामी सेवा आश्रम श्रीचैतन्य सारस्वत मठ,
दसबिसा, पो०-गोवर्धन, जिला-मथुरा (उ० प्र०) भारत।

श्रीचैतन्य सारस्वत कृष्णानुशीलन संघ—४८७ दम दम पार्क,
टैंक ३ के सामने, कलकत्ता-७०००५५ (भारत) फोन–५९५१७५

श्रीचैतन्य सारस्वत मठ-गौर वत्साही, पो०-पुरी, उड़ीसा (भारत)
(फोन,०६७५२-३४१३)

श्रीचैतन्य सारस्वत आश्रम-ग्राम व पोस्ट-हापनियां, जिला-वर्द्धमान,
(पश्चिम बंगाल (भारत)

श्रीचैतन्य सारस्वत कृष्णानुशीलन संघ-केखली, चिड़ियामोर,
दक्षिण कलकत्ता एअरपोर्ट, पो०-आर-गोपालपुर,
जिला-२४ परगना, पश्चिम बंगाल (भारत)

श्रील श्रीधर स्वामी सेवा आश्रम-श्रीचैतन्य सास्वत मठ, अटलवन,
परिक्रमा मार्ग, पो०-वृन्दावन (मथुरा) उ०प्र० (भारत)

श्रीचैतन्य सारस्वत मठ-१५ ग्लेडिंग रोड, मनोर पार्क,
लन्दन B १२ ५DD, U.K- (फोन-०८१४७८२२८३)

श्रीचैतन्य सारस्वत आश्रम-४९७ एन, १७ स्ट्रीट, जोस, सेन केली
फोर्निया ९५११२ USA. (Phone-4082886360)

श्रीचैतन्य सारस्वत मठ-२२४ ए, जालान लिज लामा ३५९००
तेनजोंग मलीम, पेरक, मलेशिया।

श्रीचैतन्य सारस्वत मठ-रूशीऊ रोज रोड, लोंग माउण्टेन मारीशस।

श्रीचैतन्य श्रीधर संघ-वाया डनडोला २४, इन्ट. ४१ स्केल B.
००१५३, रोम इटली (फोन-५८९९४२)

श्रीचैतन्य श्रीधर संघ-कोनिंग शोफ ५१९, ११०४ BE अमस्टरडम
Z O नीदरलेन्ड (फोन-०२०९७८६०२)

श्रीचैतन्त सारस्वत मठ-रिफोर्मा ८६४, सेक्टर हीडलगो, गूदलजारा
जेलिस्को, मैक्सिको।

श्रीचैतन्य सारस्वत श्राधर संघ-पो० बाक्स. १९६, साउथ लिसमोर
N.S.W. २४८०, आस्ट्रेलिया

श्रीचैतन्य सारस्वत मठ-४७ बोयड स्ट्रीट, ईस्ट केमडेन, N.J.०८१०५
U S.A (फोन-६०९९६६१७८२)

श्रीचैतन्य सारस्वत मठ-३३० एन० ई० १३० स्टे०, मिआमी,
फ्लोरिडा ३३१६१ U.S.A. (फोन-३०५८९५२०२९)

श्रीचैतन्य सारस्वत संघ-६० ग्लैंगारिफ परेड, डुबलिन. ७,
EIRE (फोन- डुबलिन ३०१६२४)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

दो शब्द

श्री श्रील भक्ति रक्षक श्रीधर देव गोस्वामी महाराज जी के स्थलाभिषिक्त आचार्य ओम विष्णुपाद श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज वर्तमान में समस्त विश्व भ्रमण करते हुए सनातन धर्म का प्रचार कर रहे हैं। जैसा कि श्रीश्री चैतन्य महाप्रभु जी ने पांच सौ वर्ष पहले कहा था—

पृथिवि ते आछे यत नगरादि-ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हैवे मोर नाम॥

श्रील गोविन्द महाराज इस प्रकार देश विदेश के भक्तों को भगवान की भक्ति के प्रति अग्रसर कर रहे हैं। इससे विदेश के भक्त-जन उनको भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद के द्वितीय स्वरूप में ग्रहण कर रहे हैं। श्रीमहाराज जी इंग्लैण्ड, अमेरिका, साउथ अमेरिका, ऐशिया में हरिकथा का प्रवचन अंग्रेजी, स्पेनिश, जर्मनी, अरबी, उड़िया, बंगला एवं अन्य विभिन्न भाषाओं में कर रहे हैं।

पहली बार हिन्दी में 'परमार्थ-पथ-निर्देश' प्रकाशित हो रहा है। मैं आशा करता हूँ कि इस लघु पुस्तिका को पढ़कर आप भगवान के भक्ति-पथ पर अग्रसर होने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे।

श्रील श्रीधर स्वामी सेवाश्रम,
गोवर्धन (मथुरा)
दि० २३-१०-१९९३

वैष्णव कृपा-प्रार्थी
श्रीपूर्णानन्द दास ब्रह्मचारी

ॐ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिसुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज
प्रतिष्ठाता – आचार्य
श्रील श्रीधर स्वामी सेवाश्रम

ॐ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर देव गोस्वामी महाराज

❀ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ विजयतेतराम् ❀

प्रथम अध्याय

श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से हम सब इस समय उनकी केलि भूमि श्रीनवद्वीप धाम, जो अत्यन्त गरिमामय एवं दिव्य स्थल है, में उपस्थित हैं। महाप्रभु श्रीमायापुर में प्रकट हुये तथा यहां नवद्वीप के नव द्वीपों, अन्तर्द्वीप, सीमान्तद्वीप, गोद्रुमद्वीप, मध्यद्वीप, कोलद्वीप मोदद्रुमद्वीप, जाहनुद्वीप तथा ऋतुद्वीप में खेले। ये नवद्वीप हैं तथा यहाँ सर्वत्र महाप्रभु की लीलायें चल रही हैं, वे नित्य हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की वे लीलायें अब भी चल रही हैं और जो अत्यन्त भाग्यशाली हैं उसे अपनी अतीन्द्रिय दृष्टि से देख सकते हैं। प्रत्येक वस्तु सदैव माया से आच्छादित है और हमारे नेत्रों के लिये यह नवद्वीप धाम भी उस माया से आवृत है। माया दो प्रकार की है। योगमाया तथा महामाया। योगमाया अपने स्वामी को सदैव पुष्टि प्रदान कर रही है, जबकि महामाया उस धरातल में किसी भी उपद्रव के प्रवेश को रोकती है।

अभी हमारी आत्मा माया से आच्छादित है। हम कृष्ण की छाया-शक्ति द्वारा आकर्षित हैं, अतएव हम इस समय उस अलौकिक जगत से दूर रह रहे हैं। किन्तु जब कृष्ण का वरद हस्त हमारे सिर पर होगा तो माया हमारे ऊपर से अपना आवरण हटा लेगी तथा हम अतीन्द्रिय लोक का साक्षात्कार कर सकेंगे एवं हम वहाँ सेवा भी कर सकेंगे।

माया शक्ति हमारे लिये बहुत भारी है क्योंकि हम बड़ी तुच्छ आत्मायें हैं। वह हमें अपने भ्रम जाल द्वारा सदैव आकर्षित कर रही है। एक अर्थ में वह हमारे आत्म-सुधार के लिये है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु बद्ध जीवों के लिये यह एक सुखद स्थिति नहीं है। यद्यपि यदि हम अपनी स्थिति को जानने का प्रयास करें तथा कृष्ण-चेतना से अवगत हों, तो हमें इस वातावरणसे राहत मिलेगी। यदि हम ऐसा

करें तो कृष्ण और उनके भक्त की कृपा से हम माया जाल से बाहर निकलने की शक्ति प्राप्त करेंगे, तथा जब हम प्रयत्न करेंगे तो कृष्ण हमारी सहायता करेंगे। वह सहायता हमें उनके भक्तों के माध्यम से प्राप्त होती है।

हर वस्तु उचित माध्यम से ही आती है। कभी कभी उच्चतर धरातल से सीधे ही कृपा प्राप्त हो जाती है, किन्तु सामान्यतया तथा स्वाभाविक रूप में वह नियत उचित मार्ग से ही आती है :

ऐछे शास्त्र कहे —कर्म ज्ञान योग त्यजि।
भक्त्ये कृष्ण वश हय भक्त्ये तांरे भजि॥

(श्रीचैतन्य चरितामृत मध्यलीला २००।२०)

साधु एवं गुरु की कृपा हमें पारलौकिक स्तर तक ले जाती है। जब हम वहाँ अपनी दृढ़ स्थिति में खड़े हो सकें तो मायादेवी हमें छोड़ देगी। इस प्रकार के विचार का उपदेश देने का प्रयास करना चाहिये। इसे जितना हम स्वयं प्राप्त कर सकें उतना ही स्पष्ट रूप से दूसरों को वितरित करें। निम्नतम से उच्चतम धरातल तक सर्वत्र एक संभावना है, हर कोई दूसरोंको कुछ न कुछ शुभ प्रदान करने का प्रयास कर सकता है। वास्तव में हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य कृष्ण चेतना है और वह साधु, गुरु एवं वैष्णव के माध्यम से आ रही है। उनके प्रति हमारी सच्चो सेवा के द्वारा वह उनकी कृपा से प्राप्त होती है।

ऐसे ज्ञान से जुड़े होने से आप भाग्यशाली हैं। किसी न किसी प्रकार आपको कुछ अनुभव तथा प्रेरणा प्राप्त हुयी है। यही कारण है कि आप यहां आये हैं तथा आप अपने भक्ति भाव को जितना अधिक हो सके प्रगाढ़तर करने का प्रयास कर रहे हैं। अनेक भक्त विविध वस्तुओं से सतत बाधायें अनुभव करते हैं। अपने भीतर से ही वे काम-क्रोध लोभ, मोह, मद. मत्सर के शिकार हैं। श्रील रूप गोस्वामी प्रभु द्वारा ऐसी स्थिति से राहत के लिये एकमात्र मार्ग बतलाया गया है।

वाचो वेगम् मनसः क्रोध-वेगम्।
जिह्वा वेगम उदरोपस्थ वेगम्

एतान वेगान यो विषहेत धीरः
सर्वमअपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ॥ (श्रीउपदेशामृत)

अपने भीतर की इन प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करने का प्रयास आवश्यक है, और वह केवल सेवा द्वारा संभव है। जब हमारे हृदय में कृष्ण-सेवा का भाव अटल रूप से उदय हो जायगा तो अन्य सारी बातें हम से दूर हो जायेंगी। उस समय केवल श्रीगुरु-वैष्णवकी सेवा के लिये ही हमारी मनोवृत्ति प्रेरित होगी।

शास्त्र कहते हैं, साधु-संग। साधु वह है जो पूर्ण चाकर हो। वह अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य से कृष्ण की सेवा में निरन्तर लगा रहता है। सच्चा साधु वह है जिसे कृष्ण-सेवा के सिवा अपने लिये अथवा अन्य किसी वस्तु की कोई कामना नहीं है। श्रीचैतन्यचरितामृत का कथन है—

कृष्ण-भक्त—निष्काम, अतएव 'शान्त'
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी—सकलि 'अशान्त'

(श्रीचैतन्य चरितामृत, मध्य-लीला १९।१४९)

'अशान्त' से तात्पर्य उन लोगों से है जो मायामय पर्यावरण से सदैव उद्विग्न रहते हैं। यद्यपि कोई भी दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा पा सकता है यदि वह अपने को स्वार्थ की वासना से मुक्त कर सके तथा साधु, गुरु एवं वैष्णव को संतोषप्रद सेवा प्रदान कर सके।

हमारे अनेक मित्र अपने लौकिक क्रिया-कलापोंसे सदैव उद्विग्न रहते हैं। किन्तु वे इस पर बड़ी आसानी से नियन्त्रण प्राप्त कर सकते हैं—उसका उपाय है बड़ी तन्मयता तथा एकनिष्ठता से गुरु एवं वैष्णवकी सेवा में लग जाना। ऐसी सेवा सीधे कृष्ण को जाती है यदि वे उस प्रकार से प्रयत्न करें तो वे भ्रामक पर्यावरण से राहत पा सकते हैं।

हम सदैव आशा और निराशा के बीच होते हैं। आशा तब आती है जब हम अतीन्द्रिय लोक से अपना समायोजन कर रहे होते हैं, किन्तु जब उस धरातल से हमारा सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, हमें एक निराशा घेर लेती है। अतः यह सदैव आवश्यक है कि उस

अतीन्द्रिय लोक से सम्बन्ध बनाये रखा जाय, और यदि हम सेवा भाव से प्रयास करें तो हमें राहत अधिक आसानी से मिल जायगी।

काम एष क्रोध एष, रजोगुण समुद्भवः।
महाशन्नो महापाप्मा, विधि एनम इह वैरिणम ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३, ३७)

प्रकृति के तीन प्रकार के गुण हैं, सत्व गुण, रजोगुण तथा तमोगुण। ये हमारे शरीर और मन के भीतर सदैव सक्रिय रहते हैं। इनमें से सत्वगुण यदा-कदा हमारे व्यावहारिक जीवन के लिये शुभ परिणाम दे सकता है, किन्तु वास्तविक व्यावहारिक जीवन मुख्यतया प्रकृति के तीनों गुणों से परे है जिसे निर्गुण कहते हैं। कृष्ण ने भगवद्गीता में सलाह दी है। "तुम सदैव निर्गुण स्थिति में रहने का प्रयत्न करो जहां ये तीनों सत्व-गुण, रजोगुण एवं तमोगुण निष्प्रभावी हैं।"

सत्वगुण हमें मांगलिकता प्रदान कर सकता है तथा हमारे मन को एक शुभ धरातल तक ले जा सकता है किन्तु कृष्ण-चेतना का निवास उससे भी परे है। कृष्ण से लगाव आवश्यक है। रूप गोस्वामी प्रभु ने उद्धरण दिया—

कृष्ण-भक्ति-रस-भाविता मति क्रीयताम् यदि कुतोऽपि लभ्यते
तत्र लौल्यम् अपि मूल्यम् एकलं जन्म कोटि-सुकृतिर्न लभ्यते

उस अतीन्द्रिय ज्ञान को प्राप्त करने के लिये व्याकुलता आवश्यक है। जब वह हमारे हृदय में अपने को पूर्णतः प्रकट कर देगा तो अन्य सारे उपद्रव हमसे स्वयमेव विदा हो जायेंगे जैसे सूर्य के पूरब में उदय होते ही हमारे भूभाग से अंधकार नष्ट हो जाता है। इस लिये हमारे भीतर कृष्ण-भक्ति की लालसा आवश्यक है।

वेदों में हम साधना की मनस्थितियों की अनेक विधाओं का दर्शन करते हैं। वेदान्त, पुराण तथा उपनिषद आदि सब सदैव निर्गुण धरातल की ओर संकेत करते हैं तथा हमें उसी धरातल पर ले जाना चाहते हैं। यदि हम उस निर्गुण धरातल में ठहर नहीं सकते तो हमें पूरा परिणाम प्राप्त नहीं होगा, अतः हमारी क्रिया, मनोदशा

सब कुछ, विधि हो या राग, उसे ऐसा होना चाहिये जो हमें उस उच्चतर धरातल पर ले जाने में सहायक हो। किन्तु हमें उसकी आकांक्षा अवश्य होनी चाहिये, तभी हम वहां जा सकते हैं, अन्यथा नहीं।

भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा यावत पिशाची हृदि वर्तते
तावद भक्ति सुखास्यात्रा कथम अभ्युदयो भवेत

जब हमारे हृदय में सांसारिक वस्तुओं के लिये आसक्ति तथा आकांक्षा विद्यमान है, उन्हें पिशाची कहते हैं। यदि पिशाचियों ने हमें अपने जादू में दबा रखा है तो वहां कृष्ण-भक्ति कैसे रह सकती है? श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं यह संभव नहीं है। तब भी यदि हम सेवा के अपने सर्वोत्तम भाव से उस स्थिति को प्राप्त करना चाहें तो अवश्य प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा तत्काल हो सकता है अथवा एक लम्बे काल के बाद हो सकता है, किन्तु यदि हम प्रयत्न करें तो उस स्थिति को प्राप्त अबश्य कर सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस प्रयास को साधना कहते हैं। साधना साध्य के लिये साधन है। सामान्यतया हमारी साधना हमें उच्चतर स्तर की ओर ले जाती है तथा निम्नतर धरातल पर गिरने से हमें बचाती है।

श्रवण-कीर्तन आदि भक्ति-साधन हैं। किन्तु वैदिक ज्ञान के विभिन्न विभागों के अन्तर्गत अन्यान्य प्रकार के साधनों यथा-योग साधन, ज्ञान-साधन तथा कर्म-साधन आदि का अस्तित्व है। इन सभी प्रकार के साधनों का प्रयोजन हमें उच्चतर स्थिति तक ले जाना है। किन्तु सर्वोच्च स्थिति तथा हमारी साधना का चरम लाभ केवल भक्ति-योग है। बिना भक्तियोग के अन्य प्रकार के साधन जैसे भुक्ति और मुक्ति हमें उचित फल नहीं दे सकते। अतः यदि एक श्रेष्ठ साधु के मागदर्शन में हम श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन आदि नवधा भक्तिसाधन करें तो हम आसानी से शुभ परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

यह नवधा-भक्ति-पीठ नवद्वीप-धाम है। नवद्वीप के नौ द्वीपों में से हर एक हमारे साधनात्मक जीवन को कुछ विशेष सुविधा प्रदान करता है। यह स्थान, कोलद्वीप पाद-सेवन क्षेत्र कहलाता है। यह वह स्थान है जहां हम कृष्ण के चरण

कमलों की पूजा द्वारा उनसे सीधा सम्बन्ध प्राप्त कर सकते हैं। यदि हम सचमुच उसे चाहते हैं तो हमें निष्ठापूर्वक एक विशेषज्ञ के माध्यम से उसे पाने का प्रयत्न करना चाहिये। तब हम उनसे आसानी से जुड़ सकते हैं।

हम शास्त्रों में देख सकते हैं कि कृष्ण-भक्त भक्तों को सन्तुष्ट करने का सदा ही प्रयास करते हैं। वह स्थिति सर्वोच्च स्थिति है किन्तु वर्तमान समय में एक दूसरी स्थिति में रह रहे हैं जो कि मनो-जगत है। मनो-जगत का तात्पर्य है मानसिक सृष्टि। यह मनो-जगत माया-जगत अर्थात् भ्रमात्मक परिवेश से विकसित हुआ है। पहले हमें मानसिक जगत से अपने को अलग करके कृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण करना होगा। तब हमें उनसे सहायता मिलेगी।

कृष्ण यदि कृपा करे कोन भाग्यवाने
गुरु-अन्तर्यामी-रूपे शिखाय आपने

पर जगत् को प्राप्त करने की प्रेरणा कृष्ण से आती है। वे कोई साधु, कोई गुरु, कोई वैष्णव भजेंगे और उनके माध्यम से हम कुछ प्रकाश तथा शक्ति प्राप्त करेंगे। इस प्रकार उनकी सहायता से हम सरलतापूर्वक साधना कर सकेंगे तथा अपना लक्ष्य प्राप्त करेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि आप सब जो यहां हैं उस अतीन्द्रिय लोक से जुड़े हैं तथा उसके प्रति उत्कण्ठा से भरे हैं। आप भाग्य-शाली हैं। ऐसा न होता तो आप यहां क्यों आते? आपको उस अतीन्द्रिय धरातल को प्राप्त करने हेतु सेवा भाव से प्रयत्न करना चाहिये तथा यदि उचित रूप से वैसा करते हैं तो लक्ष्य आसानी से प्राप्त हो जायगा। उचित मार्ग गुरु एवं वैष्णवों की संतुष्टि है।

जब श्रील गुरु महाराज ने इस श्रीचैतन्य सारस्वत मठ की स्थापना की तो वे केवल एक ऐसा स्थान चाहते थे जहां थोड़े से अनुयायियों के साथ भक्तिपरक साधना का जीवन अपना सकें। किन्तु अब यह एक बड़े रूप में विकसित हो गया है तथा दिनों दिन दूसरों की सहायता हेतु और अधिक विशाल होता जा रहा है। किन्तु श्रील गुरु महाराज की साधना-पद्धति एक अत्यन्त विशिष्ट भक्ति-मार्ग है।

यदि हम अनन्य रूप से अन्य कुछ न देखकर श्रीलगुरु महाराज की सेवा करना चाहते हैं तो हम सारे क्लेशों से मुक्त हो जायेंगे। हमें गुरु महाराज की सेवा बड़ी एकाग्रता के साथ करने का प्रयास करना चाहिये क्योंकि तभी हमको एक अवसर मिलेगा। अन्यथा हम छले जायेंगे। श्रील गुरु महाराज बड़े सरल हृदय थे। वे किसी को धोका नहीं देना चाहते थे, यही कारण है कि उन्होंने अधिक पेची-दगियां नहीं उत्पन्न की। अपने जीवन में उन्होंने केवल कृष्ण और कृष्ण-भक्ति दिखलायी। हम भी उनके दृष्टि-पथ पर आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु यदि उनकी दया हमारे भीतर सक्रिय नहीं होती, हम उसे प्राप्त नहीं कर सकेंगे। अतः एक एकान्तिक रूप से हमें श्रील गुरु महाराज को संतुष्ट करने का प्रयास करना चाहिये। तब वे बहुत प्रसन्न होंगे।

अपने मन के निर्देशन में हम बहुविधि प्रयत्न कर सकते हैं, किन्तु वह वास्तव में भक्ति नहीं है। हमारा मन सदैव इधर उधर जाता रहता है। अस्थिर और विक्षिप्त मन कुछ भी कर सकता है किन्तु उससे सदैव शुभ फल नहीं आयेगा। यदि हम अच्छा कर्म करें तो अच्छा फल मिलेगा, यदि वैसा नहीं करते तो बुरा परिणाम हमें प्राप्त होगा, हमारी स्थिति ऐसी है। मायामय परिवेश से राहत हम केवल तभी प्राप्त कर सकेंगे जब अनन्यता पूर्वक हम अपने गुरुदेव का अनुसरण करने का प्रयास करें।

बहुत से लोग बहुत सी बातें कह सकते हैं, शास्त्र भी अत्यन्त विशाल हैं। निस्सन्देह सभी शास्त्र ज्ञान से परिपूर्ण हैं, किन्तु वे इतने व्यापक हैं कि हम उनमें से खोज नहीं सकते कि हमारे लिये शुभ क्या है। किन्तु साधु, गुरु एवं वैष्णव केवल कृष्ण को संतुष्ट करने का प्रयास करते हैं, और यदि हम उनका अनुकरण करें तो हम समस्त शास्त्र-शिक्षाका लाभ उठा सकते हैं। अतएव हमएक सरल मार्गसे चलने का प्रयास करेंगे। महाप्रभु ने भी हमें निर्देश दिया है कि अनेक बातें करने की आवश्यकता नहीं है—केवल हरे कृष्ण का कीर्तन करो तथा वैष्णव-सेवा एवं प्रसाद-सेवा करो।

साधु-संग, नाम कीर्तन, भागवत-श्रवण
मथुरा-वास, श्रीमूर्तिर श्रद्धाय सेवन

सकल-साधन-श्रेष्ठ एइ पंच अंग
कृष्ण-प्रेम जन्माय एइ पांचेर अल्प संग

(श्रीचैतन्य चरितामृत, मध्य-लीला, २२-१२८ तथा २६)

कृष्ण के दासों की सेवा-संतुष्टि का प्रयास करो और उनके माध्यम से तुम सरलता से फल लाभ करोगे। यह मार्ग बड़ा सरल है—हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करो और वैष्णव-सेवा में निरत रहो। इधर उधर मत भटको। अपना ध्यान केवल गुरुदेव एवं वैष्णवों की सेवा में केन्द्रित करो। वह तुम्हारे लिये कल्याणप्रद होगा।

भक्त—पश्चिम में भक्तगण एक सामान्य प्रश्न पूछते हैं कि वे सेवा-सम्बन्ध कैसे प्राप्त कर सकते हैं। वे क्या सेवा कर सकते हैं? हम उन्हें बताते हैं कि वे विविध प्रकार से मठ की सेवा कर सकते हैं। वे कुछ सेवा दान करके यहां से अपना सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। किन्तु विशेषकर पश्चिम में जीवन बहुत भरपूर है और माया में संलग्न रहने के सुअवसर वहां सदा उपस्थित रहते हैं—वहां अख़बार टेलीविजन, रेडिआ आदि हैं। भक्तों के पास काम है। परिवार है तथा अन्य अनेक वस्तुयें हैं। इसलिये वे जानना चाहते हैं कि वे कैसे अनुभव करें कि उनका एक अबाध सेवा भाव है अर्थात् कोई भक्ति सम्बन्ध प्रतिदिन बना रहता है। केन्द्रीय मठ को देने तथा सहायता करने के साथ वे क्या कर सकते हैं?

श्रीलभक्ति सुन्दर गोविन्द देव-गोस्वामी महाराज—मैं सोच रहा हूँ वे मुझ से अधिक अच्छी प्रकार जानते हैं—अर्थात् वे उसे कर रहे हैं. तथा अब भी सेवा करना चाह रहे हैं, यह सच है। वे किस प्रकार जुड़े अनुभव करेंगे? वे किस रूप में सेवा करेंगे?

सर्वप्रथम गृह तथा वैष्णवों के प्रति समर्पण आवश्यक है तथा उसके बाद उनके निर्देशों का पालन। सेवा का अर्थ है। वे जो कुछ करने की मुझे सलाह दें—उसे मै करूंगा।" और गुरु की संतुष्टि के लिये क्या आवश्यक है? गुरु-शिष्य को हमेशा कुछ सीख देता है और यदि शिष्य तदनुसार गुरु की सेवा का प्रयास करता है तो वह वांछित फल प्राप्त करेगा। यदि मेरा गरु कहेगा, "तुम गांव गांव

जाकर उपदेश दो तथा मैं वैसा करता हूँ, तो वह मेरे लिये सेवा है। यदि गुरुदेव कहते हैं, "तुम कृष्ण-चेतना के उपदेश हेतु यहां एक केन्द्र बनाने का प्रयास करो" एवं मैं तन-मन से वैसा करने में लग जाता हूँ, तो वह मेरा साधनामय जीवन है। सब कुछ गुरु की संतुष्टि पर निर्भर है।

इसी प्रकार जहां कोई गुरु नहीं है अपितु अन्य वैष्णव उपस्थित हैं तो वैष्णवों की की गयी सेवा गुरु को ही प्राप्त होगी तथा वैसा करने से गुरु प्रसन्न होंगे। गुरु को अवश्य पूर्ण होना चाहिये अन्यथा फल भी पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त होगा। अतः जब भक्त अपने अपने देश में कार्य कर रहे हों तो उन्हें अपने गुरु की शिक्षा के पालन का प्रयत्न करना चाहिये। अपनी परिस्थितियों में गुरु एवं वैष्णव की संतुष्टि हेतु जो कुछ संभव है करेंगे। अन्यथा वे क्या करेंगे?

हर कोई सर्वत्र खाने-सोने, भोग-विलास करने, भय एवं आत्म-रक्षा करने तथा अन्ततः मरने, जन्मने एवं पुनः मरने में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। किन्तु वह वास्तव में जीवन नहीं है।

वास्तविक जीवन वह है जहां हम शाश्वत मूल्य का कुछ कर सकें। यदि कोई शाश्वत जगत के सम्बन्ध में कुछ कर सके तो वह शाश्वत फल भी प्राप्त करेगा। वह सम्बन्ध अतीन्द्रिय-ज्ञान चेतना एवं क्रिया से आता है, अतएव गुरु की शिक्षा के पालन के सिवा हमारे पास अन्य कोई उपाय नहीं है।

यदि मैं सोचता हूँ कि शाश्वत जीवन अच्छा है तथा मुझे उसकी इच्छा है तो मुझे अपने प्रशिक्षक का अनुसरण करना पड़ेगा। यदि वह एक पहुँचा हुआ भक्त है, तो जो वह कहेगा वह मेरे लिये शुभ होगा। अन्यथा, यदि मेरा प्रशिक्षक पूर्ण नहीं है, परिणाम भी शुभ हो या न हो।

अतः पूर्व या पश्चिम, उत्तर अथवा दक्षिण जितना पूर्णरूपेण संभव हो गुरुदेव का अनुसरण आवश्यक है। 'अनुसरण' का अर्थ है कि उनका आदेश मेरे लिये पर्याप्त है। "यह करो, और तुम संतुष्ट होगे।" किन्तु उसके लिये दृढ़ विश्वास आवश्यक है, अन्यथा सम्यक् रूप से अनुसरण करना संभव नहीं होगा।

सब कुछ श्रद्धा से जुड़ा है। गुरु श्रद्धा के धरातल से जुड़ा है और जब वह उस सम्बन्ध को अपने शिष्य को प्रदान करेगा तो वह भी श्रद्धा के धरातल का ही होगा। अन्यथा बहुत सी वस्तुयें हैं जो एक श्रेष्ठ परिणाम तथा एक उत्तम भावी जन्म प्रदान कर सकती हैं, किन्तु भक्ति उस कोटि की वस्तु नहीं है।

भक्ति तु भगवत-भक्तः सगेन परिजायते

वह आत्मा की क्रिया के साथ उदय होगी, अतः अब हमारी क्रिया साधक के जीवन का अनुसरण करना होगी।

श्रील स्वामी महाराज—श्रील ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने कहा—"पहले तुम बिना गणना किये महामन्त्र का जप करो, फिर माला की गणना के अनुसार जप करो, तब हरिनाम लो। हरिनाम लेने से पूर्व तुम छः महीने अथवा एक साल तक पहले अभ्यास करो।" किन्तु साधक की यह वास्तव में यथार्थ स्थिति नहीं है। सच्ची प्रक्रिया यह है कि जब तुम एक पहुँचे हुये गुरु से माला धारण करोगे, वहीं से तुम मन्त्र—महामन्त्र—की शक्ति प्राप्त करोगे तथा उन्हीं का आदेश तुम्हें जप की शक्ति प्रदान करेगा। यदि तुम उस जप-कीर्तन में सक्रिया रूप से निमग्न होंगे तो तुम शुभ परिणाम प्राप्त करोगे। किन्तु जब उन्हें जन समान्य के समूह को कीर्तन करने का आह्वान करना पड़ा जो कुछ जानते ही नहीं थे—यहां तक कि पहले कभी 'हरे कृष्ण' सुना ही नहीं था—तो वे क्या करते? किसी न किसी प्रकार की साधना आवश्यक थी।

जब एक छोटा बालक कुछ लिखने का प्रयास करता है तो वह केवल एक चिन्ह अथवा रेखा बनाता है। फिर धीरे-धीरे अपने हाथ पर नियन्त्रण प्राप्त करते करते वह ठीक ढंग से क-ख-ग लिखने लगता है। श्रील स्वामी महाराज ने पाश्चात्यों को इस प्रकार उत्साहित करने का प्रयास किया तथा निस्सन्देह यह एक प्रकार की विधि है। यह साधक की मनोदशा पर निर्भर है। यदि उन्हें कुछ स्पष्ट अनुभव मिलते हैं तो तत्काल वे सम्यक रूप से महामन्त्र जपने का प्रयत्न करेंगे। उस दशा में उच्चतर स्तर से कृपा होगी—गुरु के रूप में कृष्ण सहायता करेंगे।

अतएव जो अत्यन्त सक्रिय है तथा सदैव निरत रहने के लिये प्रयत्नशील रहता है, गुरु की शिक्षा उसे कुछ कार्य करने का दायित्व सौंपती है। उस कार्य से उसकी साधना करने की मनस्थिति दृढ़ होगी तथा उसका भक्ति-योग विकसित होगा। वह काय स्वयमेव तत्काल भक्तियोग की श्रेणी में होगा। यदि कोई विधिवत् अभ्यास कर सके तथा यदि उसके प्रति आन्तरिक आकांक्षा हो तो उक्त क्रिया अविलम्ब भक्ति में परिणत हो सकती है।

सब कुछ भक्त की मनस्थिति पर निर्भर है। कोई धन-संग्रह के लिये निकल सकता है, अन्य कोई भोजन बना सकता है, कोई बर्तन आदि मांज-धो सकता है, किन्तु सब कुछ व्यक्ति की मनोदशा पर निर्भर है कि वह कर्म होगा अथवा भक्ति। यदि कोई समर्पणकी मनोदशा में अपने गुरु की आज्ञा-पालन करता है, तो वह भक्ति होगी, अन्यथा वह पवित्र कर्म होगा। यदि कोई गुरु तथा शास्त्रके आदेशोंका अनुगमन करेगा तो वह सदैव शुभ परिणामका भागी होगा, किन्तु वह आवश्यक रूप से भक्ति नहीं होगी। यह हर एक के समक्ष एक वड़ी कठिनाई है यदि वे अपने लक्ष्य के प्रति सजग नहीं हैं। श्रील गुरु महाराज ने सदैव 'चेतना' शब्द पर बल दिया सब कुछ चेतना के भीतर समाहित है।

परिणाम भक्त की मानसिक स्थिति पर निर्भर है। अतः पहले उसे अपने अन्तः करणको स्वच्छ करनेका प्रयास करना चाहिये। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यद
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्

श्रीकृष्ण ने सब कुछ स्पष्ट कर दिया है और हमें बड़े सरल रूप में प्रदान किया है। "तुम जो कुछ करो तथा जो कुछ करना चाहो—खाना-पीना, दान इत्यादि—उस सबको मुझ से जोड़ दो। वह भक्ति होगी।" पहले यह तय करना आवश्यक है कि हमारी मांग क्या है तथा उसे प्राप्त करने का उपाय क्या है? यदि हम कृष्ण के लिये भक्ति-योग चाहते हैं तथा यदि हम माया-जगत में पड़े नहीं रहना चाहते, एवं यदि हम अतीन्द्रिय लोक में संतरण करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं जो कि हमारा घर है—तो हमें प्राण-

पण से उसे प्राप्त करनेका प्रयास करना पड़ेगा। जहां भी उपलब्ध हो उस स्थान को प्राप्त करने के लिये हमें प्रयास करना होगा तथा वहां मिलने वाले निर्देशों का जी-जान से पालन करने का प्रयत्न करना होगा। हर एक के लिये यही मुख्य वस्तु है किन्तु परिस्थितियां हमें विविध रूपों में तथा विविध स्थानों पर ले जा सकती हैं। हमें अपने मार्ग पर दृढ़ता से चलने का प्रयास करना चाहिये तथा उस मार्ग से भटकना नहीं चाहिये। यही हमारी आवश्यकता है।

भक्त—महाराज, मेरा एक प्रश्न है? जब श्रील प्रभुपाद ने संसार छोड़ा, उनके अनेक भक्त उनके प्रति अनन्य पूजा भाव के नाम पर भक्तिपरक सेवायें करते गये, कि तु उन्होंने कई गलतियां कीं तथा उनकी सेवायें कभी कभी एक गलत दिशा में चली गयीं। बाद में भी कई लोगों ने श्रील गुरु महाराज की अनन्य पूजा के नाम पर अनेक गलतियां कीं तथा यदा-कदा उनके कार्य एक गलत दिशा में गये।

अत: मैं आप से जानना चाहता हूँ कि उत्तम-अधिकारी भक्त की सेवा का अर्थ क्या है? वे लोग ऐसी गलती क्यों करते हैं, और हम सही स्थिति को किस प्रकार समझ सकते हैं?

श्रीलगोविन्द महाराज– यह किसी के सौभाग्य से आने वाला कोई मार्ग है। जिसका भाग्य सुन्दर है वह अपना मार्ग नहीं छोड़ेगा। उसने जो कुछ अपने गुरुदेव से प्राप्त किया है, उसका पालन करने का प्रयास करेगा, और उसका प्रयास सदैव उचित मार्ग में होगा।

तुम्हारा प्रश्न हर एक के लिये शुभ है। जब से श्रील स्वामी महाराज ने संसार छोड़ा उनके कतिपय भक्त अपने मार्ग से विलग क्यों हुये? श्रील गुरु महाराज के पश्चात कुछ मार्ग से बाहर जा रहे हैं। किन्तु क्यों?

यह उनकी सुकृति—उनके आध्यात्मिक भाग्य पर निर्भर है। हम देखते हैं कि उन्होंने श्रील स्वामी महाराज की सेवा की अथवा श्रील गुरु महाराज की सेवा की किन्तु वास्तव में उन्हें सही मार्ग नहीं मिला। वे वास्तविक सेवा-सम्बन्ध नहीं प्राप्त कर सके। यद्यपि उस समय श्रील गुरुमहाराज

तथा श्रील स्वामी महाराज के प्रभाव से वह कमी ढक ली गयी। शिष्यों ने उत्साह-पूर्वक अनेक क्रियायें कीं किन्तु वे वास्तव में जानते नहीं थे कि भक्तिपरक सेवा है क्या ? जब गुरुदेव ने प्रयाण किया तो शिष्यों के दोषों को ढकने वाला उनका प्रभाव भी उनके साथ ही विलुप्त हो गया। उस समय कुछ भक्त अपनी पूर्व सूक्ष्म अवस्था वापस पा गये तथा वे भ्रमित हो गये। अन्ततः यह उनके अपने कर्म पर निर्भर है, उनके सौभाग्य तथा साधना की उत्कृष्टता पर निर्भर है। ये तोनों एक शुभ परिणाम की ओर ले जायेंगे।

भक्तों के लिये स्पष्ट तौर पर यह जानना अत्यावश्यक है कि वे कौन सी साधना करना चाहते हैं, तब वे मार्ग से भटकेंगे नहीं- तथा उसमें भी उनका निजी सौभाग्य और सत्कर्म आवश्यक हैं। अन्यथा वे अपना लक्ष्य नहीं प्राप्त कर सकेंगे। हमें यह जानने योग्य बनना होगा कि क्या क्या है। यह एक तथ्य है कि जब कृष्ण विद्यमान थे भी, हर कोई उन्हें परमेश्वर के पूर्णविहार के रूप में समझने में सक्षम नहीं था। शिशुपाल एवं दन्तवक्रको कृष्णके साश्रिध्यका अवसर मिला था किन्तु वे समझ नहीं सके कि वे कृष्ण कौन थे। कृष्ण को कुरुक्षेत्र की रणभूमि में बहुत लोगों ने देखा परन्तु वे समझ नहीं सके कि कृष्ण परमात्मा के सर्वोच्च साकार रूप हैं। अतः 'देखने' के पीछे कोई सौभाग्य अवश्य कार्यरत रहता है।

श्रील स्वामी महाराज के पधारने के पश्चात् मायामय परिवेश अधिक शक्ति सम्पन्न होकर उपस्थित हुआ। जब कृष्ण इस लौकिक जगत से विदा हुये, उस समय भी मायात्मक पर्यावरण ने अपने को बड़े सशक्त रूप में प्रस्तुत किया था। जब एक महान आत्मा विदा होती है, मायामय पर्यावरण द्वारा कुछ न कुछ उपद्रव किया जाता है तथा वह दुर्बल भक्तों के हृदयों को पकड़ने तथा जीतने की चेष्टा करता है। उसका प्रयास केवल दुर्बल भक्तों को ही नहीं अपितु अच्छे कार्यकर्त्ताओं तक को जीतने का होता है। वह उन्हें जीतने का प्रयत्न करेगा। किन्तु जो अपने गुरु के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित हैं उस माया के शिकार नहीं होंगे तथा जो अच्छे अनुयायी हैं वे भी उस भ्रमजाल में नहीं फसेंगे। जो अपने निज मार्ग में भली भांति स्थिर नहीं हैं आसानी से अपनी स्थिति खो देंगे, और किसी सीमा तक ऐसा हुआ भी है।

हम एक साधु के साथ रह सकते हैं तथा उसका साहचर्य प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु मात्र उसके साथ रहने से हमें सच्चा साधु-संग नहीं मिल सकता। एक साधु के बिस्तर में खटमल हो सकते हैं, उनकी जटा में जूं हो सकते हैं तथा उसका रक्त पी सकते हैं, किन्तु वे साधु-संग में निरत नहीं हैं! इस प्रकार भाग्यहीन आत्मायें अपना पथ छोड़ देती हैं। अन्यथा सच्चा मार्ग बड़ी सुगम वस्तु है।

एक शिक्षा श्रील गुरु महाराज मुझे सदैव दिया करते थे जब मैं पहले पहल उनके पास आया—वह थी "मैं जो शिक्षा तुम्हें दूंगा, उसका पालन करो, और जो तुम्हारा मन करेगा, उसे तुम करो।" किन्तु मैंने सोचा, "मेरा मन मुझे सदैव अशुभ सीख ही नहीं देता, वह कभी कभी अच्छे सुझाव भी मुझे देता है। किन्तु श्रील गुरु महाराज ने तो मुझे अपने मन के उस सुझाव को भी न मानने के लिये कहा जिसे मैं उचित समझता हूँ। "उसका अथ है कि तुम पूरी तरह मेरे ऊपर निर्भर रहो। मेरी आवश्यकता है कि तुम निश्चित रूप से मेरे ऊपर पूर्णतः निर्भर रहो।" श्रील गुरु महाराज ने इस प्रकार कहा—"तुम्हारा मन तुम से क्या कहता है? तुम कहते हो कि वह कभी नेक सलाह देता है तो कभी बुरी राय, किन्तु ऊपर से जो नेक सलाह प्रतीत होती है वह भी तुम्हें नहीं माननी है। यदि तुम अपने मन के संसर्ग में आते हो, तो तुम्हें उसको कुछ प्रतिदान देना ही होगा, अतः तुम्हारे लिये अपने मन का संसर्ग आवश्यक नहीं है। उसके स्थान पर तुम अपने लिये मेरी शिक्षा ग्रहण करो।"

यह एक बड़ा सरल उपदेश है किन्तु हम सदैव उसका पालन नहीं कर पाते, अतः हमें कुछ कष्ट मिलता है। जब हम श्रील गुरु महाराज का आदेश भूल जाते हैं तो हमें बड़ा कष्ट मिलता है। इसके पीछे दो बातें कार्यरत हैं, एक सौभाग्य और दूसरा हमारा कर्म-सौभाग्य आवश्यक है और वह आता है सेवा से। सुन्दर भाग्य सेवा से विकसित होता है। जो सच्ची सेवा कर सकता है वह अच्छे फल प्राप्त करेगा। किन्तु जो 'सेवा' करता है किन्तु सदैव अपना स्वार्थ-चिन्तन करता रहता है, भक्ति द्वारा उसकी उपेक्षा होगी। भक्ति उसके पास नहीं जायगी। वह दीर्घ जीवन जी सकता है तथा

गौड़ीय मिशन में अनेक वर्षों तक रह सकता है, पर हो सकता है कि वह भक्ति उसे न मिले।

ऐसे तमाम उदाहरण न केवल गौड़ीय मिशन में हैं अपितु इतिहास में ऐसे उपद्रव सर्वत्र देखने को मिल जायेंगे। यह ईसाई एवं मुसलमान आदि धर्मों में विद्यमान है। तथा हिन्दू धर्म में अनेक पथ हैं। श्रीरामानुज, शंकराचार्य आदि के।

एक विख्यात कथा है कि किस प्रकार एक दिन रामानुजाचार्य के संन्यासी-शिष्य एक ऐसी बात पर झगड़ते रहे जो बहुत बड़ी प्रतीत होती थी किन्तु थी वास्तव में बहुत छोटी। बात बड़ी साधारण थी किन्तु उस पर उनका झगड़ा भयानक रूप से हुआ। कोई उन वस्त्रों के चतुर्दिक घूम गया था जिन्हें संन्यासी पहनने वाले थे। उनमें से एक बहुत विचलित हो गया और झगड़ा आरंभ हो गया रामानुज ने तब गृहस्थ-भक्त के उदाहरण के माध्यम से दिखलाया कि किसी को अपने गुरु की सेवा किस प्रकार करनी चाहिये। शास्त्रों में हम इसे तथा ऐसे अनेक उदाहरण देख सकते हैं। शंकराचार्य ने भी ऐसा ही एक उदाहरण दिखलाया।

वस्तुतः हमारी अध्यात्म-यात्रा हमारी स्पष्ट चेतना पर निर्भर होती है। जिसे अपने गुरु से कोई स्पष्ट चेतना प्राप्त हुयी है, वह अपना माग नहीं छोड़ेगा। अन्यथा विचलित होने की कुछ संभावना हरेक के विषय में है।

ज्ञान की उचित सीमा में रहना आवश्यक है। हमारे भीतर यह दृढ़ भावना होनी चाहिये कि "हम गुरुका अन्ध-अनुगमन करेंगे।" अनेक स्थानों से हमने सुना है, "जो कुछ हमारे गुरु ने दिया पर्याप्त है, दूसरों से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है।" और मुख्यतया यह सत्य है भी। यदि हमारे पास कोई बड़ा विचार, कोई व्यापक दृष्टि नहीं है तो हमें अपने गुरुदेव का एक सरल रूप में अनुसरण अवश्य करना चाहिये। कभी कभी वह बड़े सुन्दर रूपमें कार्य करेगा, किन्तु सदैव वैसा ही नहीं होता। क्योंकि मान लीजिये एक गुरु के पांच शिष्य हैं तथा गुरु एक शिक्षा देता है तो निस्सन्देह हर शिष्य उसे थोड़े बहुत भिन्न रूप में ग्रहण करेगा। उनमें से हरेक का मन

उस शिक्षा पर कुछ भिन्न रूप में सोचेगा, अतः वे उसे पांच रूपों में समझेंगे। हो सकता है आरंभ में वे एक दूसरे से अधिक भिन्न न रहे हों, पर जो कुछ थोड़े बहुत मतभेद होंगे आगे चलकर तीसरी चौथी पीढ़ी तक अधिक प्रमुख हो जायेंगे। किन्तु उस समय वे विचार श्री गुरुदेव को शिक्षा से भी नितान्त पृथक् रूप ले चुके हो सकते हैं। श्रीमद्भागवत में उल्लेख है—

एवं प्रकृति-वैचित्र्यात् भिद्यन्ते मतयो नृणाम्
परम्परयेण केशयन्यित पाषण्ड-मतयो परे

श्रील गुरुमहाराज ने इसका बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है। पक्ष, प्रतिपक्ष एवं समन्वय। जब गुरु कुछ ज्ञान देते हैं तो वह पक्ष है, किन्तु जब वह ज्ञान गुरु से निर्गत हो चुका है, किसी न किसी ओर से उसका प्रतिपक्ष भी अवश्य आना चाहिये। पक्ष के साथ-साथ प्रतिपक्ष भी समानान्तर रूप से विकसित होगा। जब दोनों का सामंजस्य हो जायगा तो वह संश्लेषण होगा। तब संश्लेषण एक पक्ष के रूप में स्थापित हो जाता है और पुनः उसके विरोध के लिये प्रतिपक्ष का उदय होगा। इस प्रकार यदि पांच शिष्य एक गुरु से सुनते हैं, पांच प्रकार के विचार विकासित होंगे। उनके विचार भी उनकी सुकृति पर निर्भर होते हैं। यदि वे अपने निर्धारित माग से अलग नहीं जाते तो हम कह सकते हैं कि उनकी अच्छी सुकृति है और वह सुकृति आती है उनकी सेवासे। इसलिये श्रील गुरु महाराज ने कहा—"मैं जो उपदेश देता हूँ, तुम उसका पालन करो, और जो तुम्हारा मन कहता है उसका पालन मत करो।"

यही कारण था कि श्रील गुरु महाराज ने हमें बहुत सी चीजें पढ़ने के लिये नहीं कहा। श्रील भक्तिवेदान्त ठाकुर ने भी अधिक पढ़ने को निरुत्साहित किया। यह भी है कि जो लोग मठ में हैं, उनके पास पढ़ने के लिये अधिक समय नहीं है। हमारा समय भी सेवा का काल है। हमारे हाथ में अतिरिक्त समय नहीं है, और हम 'अन्य ज्ञान, प्राप्त करने का प्रयास कैसे करेंगे तथा उस ज्ञान हेतु अपना समय कैसे व्यतीत कर सकते हैं ?

कोई संस्कृत में अध्ययन कर रहा है, कोई बंगाली में तो कोई अन्य अंग्रेजी में—और इस प्रकार समय बिता रहा है। वे एक पोस्ट-डेटेड चेक दिखा रहे हैं, कि "वह ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद मैं सेवा करूँगा।" किन्तु संभव है उसके पहले तुम मर जाओ, इस लिये तुम उस तरह क्यों नहीं सोचते ? इसलिये श्रील गुरु महाराज ने हमें पढ़ने का अवसर नहीं दिया।

पहले श्रील गुरु महाराज ने मुझ को कुछ मौका दिया क्योंकि मैं अशिक्षित था। श्रील गुरु महाराज ने कुछ अध्ययन करने का मुझे कुछ सुअवसर दिया, किन्तु जब मुझे कुछ उचित ज्ञान मिल गया तो श्रील गुरु महाराज ने कहा कि वह पर्याप्त है—और अधिक पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, अब तुम सेवा करो।"

हमने तन-मन से जितनी हो सकी सेवा करने का प्रयास किया और हमने देखा है कि शनैः शनैः प्रत्येक वस्तु अपने को हमारे हृदय में प्रकाशित कर रही है। हम शास्त्रों से ज्ञान एकत्रित करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। मैंने केवल कुछ वर्षों पूर्व श्रीब्रह्म-संहिता पढ़ी किन्तु मठ में आये मुझे पैंतालीस साल से ऊपर हो गये ! केवल श्रील गुरु महाराज के अन्तिम दिनों में मैंने ब्रह्म-संहिता पढ़ी।

एक दिन मैंने श्रील गुरु महाराज से प्रश्न किया—"महाराज तटस्था-शक्ति से जीवात्मा किस प्रकार आविर्भूत होती है ? मैंने उत्तर कई बार सुने किन्तु मैं उसे समझ नहीं सका अतः मैंने पुनः गुरु महाराज से पूछा—"महाराज जगत की रचना तथा जीव की रचना किस प्रकार होती है ? कृपया इसे मुझे पुनः समझाइये।"

श्रील गुरु महाराज ने कहा—"आहा, क्या तुमने ब्रह्म-संहिता नहीं पढ़ी है ? नहीं गुरु महाराज, मैंने उसे नहीं पढ़ा है।" मैंने श्रील गुरु महाराज से ब्रह्म-संहिता के श्लोक सुने थे और उन्हें जानता था किन्तु मैंने पुस्तक नहीं पढ़ी थी। तब श्रील गुरु महाराज ने कहा—"उसे पढ़ो, तुम उसके प्रथम खण्ड में अपने प्रश्न का बड़े स्पष्ट रूप से विवेचित उत्तर पा जाओगे।" उन्होंने भी एक संक्षिप्त व्याख्या की।

वह प्रश्न बड़ा कठिन था। जीवात्मा अतीन्द्रिय है किन्तु

माया-शक्ति भौतिक पदार्थों को उत्पन्न करती है। उसके कार्य-कलाप सदैव भौतिक जगत तक सीमित हैं किन्तु जीव अतीन्द्रिय है, तथा कृष्ण अलौकिक हैं। अतः सृष्टिको रचना हेतु अतीन्द्रिय तथा भौतिक एक साथ कैसे जुड़ सकते हैं? यह प्रश्न था। किन्तु श्रील गुरु महाराज ने इस श्लोक से उत्तर दिया—**तल्लिंग भगवान शम्भूः**। कृष्ण दृष्टि फेंकते हैं और प्रकृति गर्भ धारण कर लेती है—**मायाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते चराचरम्** (गीता ९.१०) मध्यवर्ती स्थिति में वह 'दृष्टि फेंकना' शम्भु द्वारा किया जाता है। यह स्थिति है।

श्रील गुरु महाराज ने शिक्षा दी—"ब्रह्म-संहिता पढ़ो, तुम उसमें हर बात की व्याख्या देख सकोगे।" और जब मैंने ब्रह्म-संहिता पढ़ी, मैं देखकर चकित रह गया। "आह इस पुस्तक में सारा ज्ञान है किन्तु मैंने इसको पहले नहीं पढ़ा। सारा ज्ञान जो श्रील गुरु महाराज, हमें प्रदान कर रहे हैं, उसमें निहित है।" तब हमारे मन में विचार आया कि इस श्रीब्रह्म-संहिता को हम अवश्य प्रकाशित करें तथा उसे सब लोगों को वितरित करेंगे।

वास्तव में श्रील गुरु महाराज ने गुरु एवं वैष्णवों की सेवा पर बल दिया, और उनकी कृपा से वह ज्ञान हमारे हृदय में अपने को प्रकट करेगा। हम कह सकते हैं कि अब हम अतीन्द्रिय लोक के समाचार के विषय में कुछ जानते हैं। 'जानने' का अर्थ है 'अनुभव' करना। हम कह सकते हैं कि हमारे पास कुछ अनुभव है और प्रक्रिया का पालन कर आप भी उन अनुभूतियों को प्राप्त कर सकते हैं।

मुझे विश्वास है कि हर एक के पास कुछ अनुभव हैं अन्यथा वे इस मार्ग में, विशेष कर श्रील गुरु महाराज के मठ में जो कि श्रील गुरु महाराज का मार्ग है, नहीं आ सकते। भक्तों में अनुभव तो है, परन्तु कदाचित वे उन्हें स्पष्ट रूप से अनुभव नहीं कर पाते। तुममें से हर एक को कभी न कभी अनुभूति अवश्य होती है, अन्यथा इस भक्ति मार्ग में रह सकना संभव नहीं है। किन्तु श्रील गुरु महाराज की शिक्षाओं में मुख्य वस्तु वैष्णवों की सेवा करना तथा अपने गुरु का अनुसरण करना है। इस प्रकार तुम सब कुछ प्राप्त कर लोगे।

श्रील स्वामी महाराज के अनेक शिष्य इस मिशन में थे। जब वे श्रीमन महाप्रभु के पंथ में आये तो निस्सन्देह वे बड़े भाग्य शाली थे, किन्तु उनके बाद के कार्यों ने कभी कभी उन्हें बहुत संकट में डाला। कभी कभी वे नहीं जानते थे कि क्या-क्या है और कभी कभी उन्हें गुरु से सीधे-सीधे मार्ग दर्शन भी नहीं मिलता था। उन्होंने कुछ बातें सुनी थी पर अन्य बातें नहीं, इसलिये उन्होंने उचित भक्ति भाव खो दिया तथा जो कुछ वे कर रहे थे कर्म की परिधि में जाने लगा न कि सेवा की परिधि में। उस रूप में उन्होंने सोचा, "हम संतुष्ट हैं। यह अतीन्द्रिय ज्ञान है।"—उनमें से कुछ माया द्वारा आसानी से छले गये।

जो सदैव सोचता है। "अभी इससे भी अधिक है और मुझे वह चाहिये, "तथा जो सतत उसकी खोज में प्रयासरत रहता है एवं प्राप्त करना चाहता है, वह कभी छला नहीं जायगा।

श्रील स्वामी महाराज के समय में सब कुछ उनके प्रभाव के अधीन चलता था तथा उस समय बहुत कम लोग समझ सके कि उनकी वास्तविक स्थिति क्या थी। उन्होंने कहा—"मैं इस्कॉन हूँ, तुम मेरे पीछे आओ" तथा उन्होंने उनके पीछे चलने का प्रयास किया। किन्तु वे यह नहीं जानते थे कि वे किस अंश का अनुसरण करें, इस अंश का या उस। जैसे उनका मिशन बढ़ा भक्तों का सेवा का भाव सदैव स्थिर नहीं रह सका। उन में से बहुतेरों के लिये यह एक बड़ी कठिनाई थी। कभी ये बड़े उदास थे, कभी बड़े उत्साही—उनकी कई अवस्थायें रहीं। जिन विभिन्न दशाओं से एक भक्त गुजरता है उनका शास्त्रों में उल्लेख है। उत्साहमयी, घनतरला, व्यूरविकल्पा, विषय संगरा, नियमाक्षमा, तरंग रंगिणी।

आरंभ में साधक बड़े उत्साह का अनुभव करते हैं तथा विविध प्रकार की सेवायें करते हैं, किन्तु बाद में उनकी सेवा भावना शिथिल हो जाती है। तब कोई लहर उनके मनमें आ सकती हैं तथा उस लहर के फल स्वरूप कोई शंका की मनस्थिति उत्पन्न हो सकती है। तत्पश्चात लौकिक सुख के धरातल के साथ कुछ सम्बन्ध उदय होता है तथा उसके साथ ही साथ लोकोत्तर जगत के साथ भी सम्बन्ध बना रहता है। उस स्थिति में वे भ्रमित हो

जाते हैं। उस अवस्था को पार कर लेने पर पहले निष्ठा, स्थिरता आती है, फिर रुचि आस्वाद आता है। तब वे अधिक शक्ति अनुभव करते हैं। उक्त अवस्था में सारी बाधायें उनके पीछे चली जाती हैं और वे और अधिक स्थिरता के साथ आगे बढ़ सकते हैं। भक्ति की इन अवस्थाओं का निरूपण शास्त्रों में है।

अतः हम मान सकते हैं अथवा देख सकते हैं कि कोई सेवा कर रहा है, किन्तु वह सदैव वास्तविक सेवा नहीं होती। सेवा और अधिक सेवा प्रदान करती है, किन्तु और अधिक सेवा क्यों नहीं आ रही है ? लक्षणोंको देखकर हम कह सकते हैं कि कुछ लोग वास्तविक सेवा नहीं कर रहे थे, इसलिये श्रील स्वामी महाराज एवं श्रील गुरु महाराज के पधारने के पश्चात् उन्हें कुछ कठिनाई हुयी।

इसलिये हमें अपनी स्थिति तथा अपनी सेवा के प्रति सजग रहना चाहिये, तब हम अपनी स्थिति से डिगाये नहीं जायंगे। किन्तु यदि कोई विचलित होने का प्रसंग आता भी है, तो यदि हम निष्ठावान हैं तो उस संकट से भी उबर जायेंगे।

भूमौ स्खलित पादानां भूमिर् एवावलम्बनम्
त्वयि जातापराधानां, त्वम् एव शरणं प्रभो

जब एक बच्चा चलने का प्रयास करता है, तो वह कभी कभी धरती पर गिर जाता है किन्तु पृथ्वी से ही सहायता लेकर वह पुनः उठता है, तथा कुछ दिनों पश्चात् वह बड़ी आसानी से चलने लगता है। यही नहीं, अपितु और बड़े होने पर वह बहुत तेज दौड़ सकेगा। उसे सब कुछ मिलता है, किन्तु पहले उसे प्रयत्न करना होगा, अन्यथा उसे कुछ नहीं मिलेगा।

जब तक हम इस शरीरमें निवास करते हैं, विचलित होने की संभावना सदैव बनी रहती है। यदि हम अपने मानसिक तथा भौतिक शरीरों के आग्रह को न सुने तो हम विचलित नहीं होंगे—अन्यथा हर एक के लिये विचलित होने की संभावना है।

अध्याय--दो

'श्री पुरी धाम के पथ पर'

कल आप एक विशेष तीर्थ स्थल को जा रहे हैं। वहां आप देखेंगे कि जगन्नाथ मन्दिर के सेवायत लोग, जिन्हें पण्डा कहते हैं, एक विशेष हैसियत रखते हैं। एक उक्ति है: "यदि तुम मुझे प्रेम करते हो तो मेरे कुत्ते से भी प्रेम करो।" तात्पर्य यह कि यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो मेरे कुत्ते के प्रति भी अपने प्रेम का प्रदर्शित करो, तब मैं मानूंगा कि तुम सचमुच मुझ से प्यार करते हो। भगवान जगन्नाथ ने पण्डों को वहां नियन्त्रक का दर्जा दे रखा है, अतः वे जो कुछ करते हैं, उसमें हमारी कोई दखल नहीं है।

महाप्रसाद समूचे विश्व में उपलब्ध है, किन्तु जगन्नाथपुरी में वह भिन्न है। वहाँ पण्डे किसी को मन्दिर के अन्दर जाने ही नहीं देते। वे विशेषकर उन लोगों को जिन्हें निम्न वर्ण का अथवा म्लेच्छ समझते हैं, मन्दिर में प्रवेश नहीं करने देते। किन्तु उसी मन्दिर से जब महाप्रसाद बाहर आता है तो वे सर्वाधिक नीच वर्ण एव म्लेच्छों के हाथों से उसे खायेंगे। इसका अर्थ है कि वे कुछ रिवाजों का पालन करते हैं। वे उस प्रथा का पालन करते हैं जिसे जगन्नाथ स्वामी ने लागू किया था।

रामानुजाचार्य ने वह प्रथा तोड़नी चाही थी, किन्तु उसका परिणाम क्या हुआ? रामानुजाचार्य की इच्छा थी कि भगवान जगन्नाथ की पूजा विधि-मार्ग से हो। वेदों में, विशेषकर मनु-संहिता में, कतिपय विधि-विधान है और वे चाहते थे कि उन विधि-विधानों के अनुसार पूजा उचित एवं मान्य रूप से की जाय। उन्होंने देखा कि जिस रीति से पण्डे पूजा करते हैं वह परम्परागत रीति थी. जिन मन्त्रों का वे प्रयोग करते थे वे ठीक नहीं थे, तथा उनकी इच्छा थी कि पूजा विधिवत ढंग से की जाय। यहां के सारे विद्वान उनके द्वारा पराभूत हुये। दूसरे दिन निर्णायक मीटिंग होना तय हुआ था और राजा को पूजा की वैदिक रीति विवश होकर लागू करनी

पड़ती। उस रात जब रामानुजाचार्य सो ही रहे थे उनकी चार-पायी तीन सौ मील दूर कूर्म क्षेत्र में फिक गयी। प्रातःकाल उन्हें विस्मय हुआ कि वे कहां हैं और उन्होंने पाया कि वे कूर्मक्षेत्र में हैं। उन दिनों वायुयान नहीं थे। यह संभव नहीं था कि उन्हें रात में कोई क्लोरोफाम सुंघा देता और हवाई जहाज से इतनी दूर उठा ले जाता। किन्तु रामानुजाचार्य ने वास्तव में देखा था कि वे अपने पूरे दल के साथ कूर्मक्षेत्र में हैं। जगन्नाथ स्वामी ने उन्हें एक स्वप्न भी दिया जिसमें उनसे कहा, "जिस प्रकार यहां मेरी पूजा हो रही है वह जारी रहेगी। आप हस्तक्षेप न करें। यहां से पधारें।"

ऐसे स्थान पर ठहरने के लिये आवास पा सकना कठिन है। किन्तु श्रील गुरु महाराज के प्रताप और भगवान जगन्नाथ की कृपा से हमें वहां कुछ स्थान मिल गया और अब हम कुछ और स्थान प्राप्त करने में सफल हो गये हैं। अब श्रील गुरु महाराज की अभिलाषायें पूरी हो गयी हैं और हम देख सकते हैं कि ठाकुर जगन्नाथ स्वामी की हमारे ऊपर विशेष कृपा-दृष्टि है। पहले अनेक प्रयासों के बावजूद मैं वहां नहीं जा सका किन्तु अब भगवान जगन्नाथ मुझे प्रायः वहां खींच ले जाते हैं।

मुझे नहीं मालूम कि कल मैं आपके साथ जा सकूंगा। मैं भगवान जगन्नाथ से प्रार्थना कर रहा हूँ क्योंकि मुझे मालूम है कि मैं तभी जा सकूंगा यदि वे बुलाते हैं, अन्यथा नहीं। किन्तु उन्होंने आप सबको आकर्षित किया है। इसीलिये आप सब यहां आये हैं तथा इस आश्रमके साधुओं एवं भक्तों के साथ सम्मिलित होकर, आपको वहां जाने का सुअवसर मिला है। आपको मालूम है कि जीवन की हर परिस्थिति में पैसे की आवश्यकता पड़ती है। जीवित रहने एवं दैनन्दिन जीवन-यापन में पैसे का सदैव खर्च पड़ता है। फिर भी पैसा सब कुछ नहीं है। इसकी कोई निश्चितता नहीं है कि यदि मेरे पास पैसा है तो मैं जाऊंगा ही। यह एक ऐसा सत्य है जो मेरे जीवन में अनेक बार प्रमाणित हुआ सब जगन्नाथ स्वामी से प्रार्थना करें कि वे हमें सुरक्षित वहां ले जांय तथा हम को पुनः उस स्थान पर सकुशल वापस पहूँचा दें जहां हम अपना सेवा कार्य कर रहे हैं। आज की हमारी

एकमात्र प्रार्थना यही है। हमारे पास प्रार्थना के लिये अन्य कुछ नहीं है।

हम भ्रमण के लिये नहीं अपितु एक तीर्थ स्थल को, एक पवित्र स्थान को जा रहे हैं। वहां जाने से हमारे तन, मन, आत्मा सब शुद्ध होंगे। हम समुद्र के किनारे जा रहे हैं। महाप्रभु ने कहा है, "आज से यह समुद्र महातीर्थ बन गया है।" जैसा है समुद्र स्वयं महान तीर्थ स्थान है, क्योंकि सभी पवित्र नदियों का जल वहाँ विलय करता है। उसके अतिरिक्त, श्रील हरिदास ठाकुर के दिवंगत होने पर, महाप्रभु ने उनके शरीर को अपने हाथों में लेकर नृत्य किया और जब उन्होंने उनके शरीर को समुद्र-स्नान कराया, तो कहा, "आज से समुद्र का जल वास्तव में महान तीर्थ स्थल बन गया क्यों ?

श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

भवद्-विधा भागवतास्तीर्थी भूता: स्वयं विभो
तीर्थी-कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्त:स्थेन गदाभृता

(श्रीमद्भागवत, १.१३.१०)

जिनके हृदय में गदाधर, परमेश्वर सदा विराजमान रहते हैं—यदि वे तीर्थ स्थलों का शुद्धीकरण नहीं कर सकते तो और कौन कर सकता है ? वे साकार मूर्तिमान तीर्थ हैं और उन्हें तीर्थ यात्रा में जाने की आवश्यकता नहीं है।

तब वे तीर्थ स्थलों को क्यों जाते हैं ? वास्तव में पापी जन तीर्थ स्थलों को दूषित कर देते हैं। हर व्यक्ति और हर स्थान की एक निश्चित क्षमता होती है। हमारी भी एक निश्चित क्षमता है अर्थात् हमारे पाप का भार इतना बढ़ा है कि उसे एक तीर्थ स्थान भी नहीं पचा सकता। इसी प्रकार एक तीर्थ स्थान स्वत: प्रदूषित हो जाता है। ऐसे समय में वे महापुरुष जिनके हृदय में परमात्मा विराजते हैं, वहां प्रकट होते हैं। जब वे पवित्र जल में स्नान करते है तो जल स्वच्छ हो जाता है जैसे कि शुद्ध करने वाले ने उसे स्वच्छ कर दिया हो। वह उनकी स्वाभाविक क्षमता है। महाप्रभु ने इसका सर्वोच्च उदाहरण दिया है। जब महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर के शरीर को वहां समुद्र में स्नान कराया तो कहा कि पुरी का समुद्र सबसे बड़ा तीर्थ स्थान बन गया है। हरिदास

ठाकुर प्रतिदिन भगवान के नाम का तीन लाख बार जप करते थे। जब वे उच्च स्वर में कीर्तन करते थे तो अपने इर्द-गिर्द समस्त सजीव तथा निर्जीव पर्यावरण तक को विमल कर देते थे। उनकी शुद्धता निर्विवाद थी।

जो पाश्चात्य भक्त भारत आये हैं जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश नहीं करने पायेंगे किन्तु तब भी वे वहां बारम्बार जाते हैं, क्योंकि वे जगन्नाथ धाम में महाप्रभु की क्रीड़ाओं से आकर्षित हैं।

सभी स्थानों में महाप्रभु ने जगन्नाथ धाम का चयन किया जो कि कुरुक्षेत्र से अभिन्न है। भक्ति विनोद ठाकुर ने कहा है कि कुरुक्षेत्र हमारे लिये पूजा का सर्वोत्तम स्थान है। क्यों? जहां आकांक्षा प्रबलतम है, वहां तृप्ति का सर्वोच्च स्थान है। यदि तुम्हें भूख नहीं है तो तुम परम स्वादिष्ट भोज का भी आनन्द नहीं ले सकते। दूसरी ओर यदि तुम भूख से व्याकुल हो तो नमक अथवा पालक के साथ चावल भी तुम्हें अमृतोपम आनन्द देगा। बचपन में मुझे मैलेरिया हो गया था और डॉक्टर ने मुझे 'पोड़ा भात' नाम की कोई चीज खाने को कहा। आप जानते हैं 'पोड़ा भात' कैसे बनाया जाता है? गाय के गोबर के कन्डे पर आंच में थोड़ा सा चावल उबाला जाता है तथा उसे पकने में बड़ा लम्बा समय लगता है। इस प्रकार चावल घण्टों पक रहा था और मैं उस ओर ताक रहा था कि वह खाने को कब मिलेगा।

यह माँग जो भीतर से आती है हमारे लिये सबसे बड़ी वस्तु है। यह लालसा कहलाती है और यही रागानुगा भक्ति है।

कृष्ण-भक्ति रस-भाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते
तत्र लौल्यम् अपि मूल्यम् एकलं
जन्म-कोटि-सुकृतिनं लभ्यते

'कृष्ण-भक्ति-रस-भाविता मतिः' कोटि की भक्ति जिसमें कृष्ण की प्रेमा भक्ति में सम्पूर्ण चेतना सरावोर हो जाती है—साधारण भक्ति नहीं है। ऐसे प्रेम की मांग भी कोई छोटी मोटी मांग नहीं है।

भगवान स्वयं कहते हैं—

साधवो हृदयं मह्यम् साधूनां हृदयं त्वहम्
मदन्यत ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि

(श्रीमद्भागवत ९.४.६८)

भगवान दुर्वासा मुनि से कह रहे हैं, "ऐसा कुछ नहीं हैं जो मैं कर सकूं। मेरे शुद्ध भक्तों ने मुझे अपने प्रेम में बांध लिया है, और मैंने भी उन्हें अपने प्रेम में बांध लिया है। इस प्रकार हम एक दूसरे के ऋणी हैं। मैं निष्पक्ष नहीं हो सकता।"

परमेश्वर परमात्मा इसी प्रकार अपने भक्तों का ऋणी है। वह निष्पक्ष नहीं हो सकते।

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्-स्त्रियः सत्पतिं यथा

(श्रीमद्भागवत ९.४.६६)

कृष्ण कहते हैं, "मेरे भक्त मुझे अपनी सेवा से मोहित कर लेते हैं। उनकी एकमात्र इच्छा है मेरी सेवा करना। वे और कुछ नहीं चाहते।" यदि सेवा के दौरान उन्हें किसी सुख की अनुभूति होती है तो वे सोचते हैं कि उनसे कोई अपराध हो गया, वे मानते हैं कि वे संभवतः सुख-भोग की मनोदशा में आ गये हैं। केवल वह देखने के लिये कृष्ण उन्हें सेवा का पर्याप्त अवसर देते हैं। वे उन्हें इतनी सेवा प्रदान करते हैं कि वे उससे उन्मत्त हो जाते हैं। कृष्ण सोचते हैं, "यह क्या है? राधारानी मुझे देखकर इतनी विह्वल हो जाती हैं। उस आनन्दातिरेक की गहराई क्या है? मैं उसे माप सकता हूँ? मैं उसे माप नहीं सकता क्योंकि मैं राधारानी नहीं बन सकता।" तब

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः
सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभात्
तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः

(श्रीचैतन्य चरितामृत, आदि लीला १.६)

("श्रीराधा के प्रेम की वह अपार महिमा क्या है ? मेरा वह असाधारण प्रेम माधुर्य-तथा सम्मोहन क्या है जिसका आनन्द श्रीराधा लेती है ? तथा वह सुख क्या है जिसे मेरी रूप-माधुरी का पान करके श्रीराधा अनुभव करती है ? इन तीनों भावों का आस्वाद करने की उत्कण्ठा लिये चन्द्र—कृष्ण चन्द्र शची के गर्भ के समुद्र से उत्पन्न हुआ था।")

श्रीराधारानी के विप्रलम्भ के सर्वोच्च रस के आस्वादन हेतु, महाप्रभु जगन्नाथ धाम गये जो कि कुरुक्षेत्र है। क्यों ? क्योंकि वहां श्रीराधारानी सोच रही हैं, "मेरे स्वामी मेरे हृदय को चोर कर अलग कर रहे हैं।" श्रीराधारानी जानती हैं कि कृष्ण उनके जीवन धन हैं। किन्तु वहां वे देखती हैं कि वे (कृष्ण) अपने बच्चों, मित्रों, सम्बन्धियों तथा रानियों से घिरे हैं, तथा वे सब पूरी जगह को आच्छादित किये हैं। वे मात्र एक गोपी हैं जिन्हें सामान्यतया ऐसे शाही समागम में कोई महत्व नहीं दिया जायगा। किन्तु उन्होंने उन्हें महत्व दिया, और एक बड़े विशिष्ट रूप में। उन्होंने उनसे रास नृत्य करनेकी प्रार्थनाकी जो केवल वृन्दावनमें किया जाता है। उन्होंने जब उसे देखा तो चकित रह गये। उन्होंने कहा "हमने ऐसी अद्भुत वस्तु कभी नहीं देखी।" तब राधारानी मुस्करायीं। उन्होंने कहा, तुमने क्या देखा ? तुमने एक शिरविहीन शरीर, एक मृत वस्तु देखी है। तुमने वास्तविक वस्तु नहीं देखी है। उसे तुम केवल वृन्दावन में देख सकते हो। वह यमुना कहां हैं ? कदम्ब वृक्ष के कुंज कहां हैं ? मोर तथा तोतोंके कलरव कहां है ? और हमारे प्राणेश्वर कृष्ण कहां हैं जो बंशी बजाते हैं और गऊएं चराते हैं ? इनमें से यहां कुछ भी नहीं है इसलिये तुम यहां रास-नृत्य कैसे देख सकते हो ? यदि तुम वास्तविक वस्तु देखना चाहते हो तो तुम्हें वृन्दावन जाना होगा।"

दूसरे अवसर पर कृष्ण ने उद्धव को बताया कि भक्ति का चरम लाभ क्या है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्

(श्रीमद्भागवत ११.१४.१५)

(मेरे प्रिय उद्धव भगवान ब्रह्मा, भगवान शिव, भगवान संकर्षण, भाग्यदेवी श्रीलक्ष्मी, तथा वास्तव में मेरी आत्मा तक मेरे लिये उतने प्रिय नहीं हैं जितने आप हैं।) किन्तु उद्धव स्वयं सोच रहे थे,

आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्

(श्रीमद्भागवत १०.४७.६१)

जब उद्धव वृन्दावन गये तो वे गोपियों के कृष्ण के प्रति, प्रेम भक्ति, आकर्षण एवं स्नेह को देख कर ऐसे अभिभूत हुये कि उन्होंने कहा, "जन्म जन्मान्तर मेरी केवल एक अभिलाषा है : मैं वृन्दावन में धूल का एक कण होना चाहता हूँ। केवल वही नहीं मैं वृन्दावन के उन वृक्षों लताओं में से एक होना चाहता हूँ जो उन रज-कणों को धारण करते हैं तथा वहां अनन्त काल तक रहना चाहता हूँ। यहां वृन्दावन की भूमि में कृष्ण ने रस-केलि की है तथा उनकी सहचरी गोपियां भी यहां विचरण करती हैं। यदि मैं यहां के तृण-लता के रूप में जन्म ले सकूं जिससे उनके चरण-रज के कणों को अपने मस्तक पर धारण करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूं, तो वह मेरा परम सौभाग्य होगा।"

कृष्ण की ऐसी महिमा है तथा उनसे वियोग की ऐसी घनीभूत भावना है। महाप्रभु ने श्रीनीलाचल-धाम में हमें उस विप्रलम्भ की पराकाष्ठा दिखलायी है।

श्रीगदाधर पंडित, जिन्होंने महाप्रभु को अपने अन्तर्तम में रखा तथा सर्वोच्च सेवा की, भी वहीं रहते थे। महाप्रभु ने संन्यास लिया तथा जगन्नाथ पुरी को गये और उनकी इच्छा से भगवान गोपीनाथ प्रकट हुये। जब आप पुरी जायेंगे तो आप सब वहां भगवान गोपीनाथ को देखेंगे। अपने श्रील गुरु महाराज द्वारा दोनों महाप्रभु तथा गदाधर पंडित की भावनाओं का वर्णन एक सुन्दर श्लोक द्वारा किया गया है।

गदाधर पंडित के चरण-कमल हमारी एकमात्र सम्पत्ति है। वे विप्रलम्भ के समुद्र के सहारे जिये जो उनके प्राण-धन भगवान गौरांग द्वारा प्रकट किया गया तथा जिन्होंने उनका सब कुछ हरण कर लिया। महाप्रभु कृष्ण-विरह से पीड़ित थे तथा उनकी वियोग की भावना इतनी सघन थी कि कभी कभी उनका शरीर विशाल-विस्तृत हो जाता था तो कभी कछुये की भांति वे अपने अंगों को संकुचित कर लेते थे तथा कभी कभी उनके शरीर के जोड़ पृथक हो जाते थे।

इस प्रकार महाप्रभु, श्रीकृष्ण स्वयं, कृष्ण के तीव्र वियोग में दग्ध रहे और गदाधर पंडित से भगवान कृष्ण की लीलायें सुनकर वे प्रफुल्ल हो जाते थे। जब कोई व्यक्ति गहन अवसाद में होता है तो वह क्या करता है? वह अपने दुखसे अन्धा हो जाता है और निश्चय नहीं कर पाता कि उसे शान्ति कैसे मिले। इसलिये वह शराब पीने लगता है। श्रीगदाधर पंडित ने महाप्रभु के लिये इस प्रकार के नशे की व्यवस्था श्रीमद्भागवत से उन्मत्त करने वाले प्रसंगों को उन्हें सुनाकर की। इस प्रकार उन्होंने अपने हृदयेश की सेवा की।

तथा गदाधर पंडित को विरह की अपनी अनुभूतियां कैसी थीं? वे देखते हैं कि उनके प्रिय स्वामी उनके समक्ष हैं तथा उनके स्वामी इतनी तीव्र व्यथा से ग्रस्त हैं कि वे जब तब अचेत हो जाते हैं। उनके स्वामो के शरीर में विरह के सारे आठ लक्षण यथा-प्रस्वेद, कम्पन, अश्रुपात, सन्न रह जाना, शरीर के रंग में परिवर्तन आदि घटित हो रहे हैं, किन्तु वे इस विषय में कुछ कर सकने में असहाय हैं। इस प्रकार विलाप करते उनकी आंखों से अविरल अश्रुपात होता रहता था।

गदाधर पंडित जब भागवत पढ़ते थे तो कृष्ण-विरहकी भावना से इतने उन्मत्त हो जाते थे कि उनकी अश्रुधारा कागज पर लिखे अक्षरों को धो देती थी। इसका प्रमाण यह है कि जब श्रीनिवास आचार्य उनके पास श्रीमद्भागवतका अध्ययन करने आये तो गदाधर पंडित ने उनसे कहा, "मेरे प्रिय वत्स, जब मैं महाप्रभु को भागवत पढ़कर सुना रहा था तो मेरी पुस्तक के सारे शब्द धुल कर

साफ हो गये, इसलिये अब मैं इस पुस्तक से तुम्हें नहीं पढ़ा सकता। कृपया कहीं और से एक पोथी की व्यवस्था करो। महाप्रभु ने स्वप्न में मुझे निर्देश किया है कि तुम आ रहे हो। किन्तु तुम्हें एक पोथी की आवश्यकता है। मैंने सब कुछ कण्टस्थ कर लिया है किन्तु तुम्हें पुस्तक चाहिये।" इस प्रकार गदाधर पंडित ने आंसुओं से भागवत की पूजा की। क्या पूजा के लिये किसी सामग्री की आवश्यकता है? अपने निज अश्रु सर्वोत्तम सामग्री हैं।

इन गदाधर पंडित के चरण कमल हमारे अन्तिम गन्तव्य हैं। गौर-गदाधर हमारे पूज्य देवता हैं और उनके विप्रलम्भ का सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन नीलाचल धाम में देखा गया था।

कृष्ण दास कविराज ने श्रीचैतन्य चरितामृत में श्रीमद्भागवत के श्लोकों के गहन तात्पर्य का उद्घाटन किया है तथा उन्होंने उनसे ऐसी अन्तर्निहित सम्पदा का प्रकाशन किया है कि उसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। जब महाप्रभु भगवान जगन्नाथ को रथ यात्रा में देखते हैं तो इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—

आहुश्च ते नलिन-नाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहञ्जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः॥

(श्रीमद्भागवत् १०.८२,४६)

("हे पद्मनाभ, आपके चरण-कमल, जो अगाध बुद्धि वाले महान योगियों के हृदयों में ध्यान के शाश्वत विषय हैं, संसार-कूप में फंसे प्राणियों के एकमात्र आश्रय हैं। वे चरण कमल हम साधारण गृहस्थ नारियों के हृदयों में कृपा-पूर्वक प्रकट हों")

नहे गोपी योगेश्वर, तोमार पदकमल
ध्यान करि पाइबे सन्तोष
तोमार वाक्य-परिपाटि, तार मध्ये कुटिनाटी,
शुनि गोपीर बाढ़े आर रोष

(श्रीचैतन्य चरितामृत, मध्यलीला, १३.१४१)

(गोपियां रहस्यवादी योगियों की भांति नहीं हैं। वे तथा-कथित योगियों का अनुकरण कर और केवल आपके चरणकमलों का ध्यान कर कभी संतुष्ट नहीं होंगी। गोपियों को तथाकथित ध्यान का उपदेश देना छल कपट का एक और प्रकार है। जब उनसे योग के गूढ़ अभ्यास करने को कहा जाता है तो वे जरा भी संतुष्ट नहीं होतीं। दूसरी ओर वे आपसे और रुष्ट हो जाती हैं।") गोपियों में कितनी तीव्र विरह-वेदना है ! "आप किससे क्या कह रहे हैं ?"

देहस्मृति नाहि जार, संसारकूप काहां तार,
ताहा हैते ना चाहे उद्धार

(श्रीचैतन्य चरितामृत, मध्य लीला १३.१४२)

गोपियां कह रही हैं, "लोग मृत्युलोक से उद्धार हेतु आपकी पूजा करते हैं, परन्तु वह हमारी प्रकार की पूजा नहीं है। हमें मुक्ति नहीं चाहिये। हमें तो अपने शरीरों तक की सुधि नहीं है। भौतिक अस्तित्व की हमें क्या चिन्ता है ? और आप कह रहे हैं कि हमें विषय जगत से मोक्ष मिल जायगा।"

आहुश्च ते नलिन-नाभ पदारविन्दं योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यम् अगाध-बोधैः "वे प्रक्रियायें केवल उन लोगों के लिये हैं जो मुक्त होना चाहते हैं। हमारे एकमात्र लक्ष्य आपके पाद-पकज हैं।" ताहां तोमार पद-द्वय, कराह यदि उदय, तबे तोमार पूर्ण कृपा मानी।

नीलाचल-धाम में वियोग की ऐसी गहन अनुभूतियों की चरम-साधना हुयी है।

चण्डीदास विद्यापति, रायेर नाटक-गीति,
कर्णामृत श्रीगीत-गोविन्द
स्वरूप-रामानन्द-सने, महाप्रभु रात्रि-दिने,
गाय, शुने परम आनन्द

(श्रीचैतन्य चरितामृत, मध्यलीला २.७७)

(उन्होंने भी चण्डिदास तथा विद्यापति के गीत गाते और पुस्तकें पढ़ते तथा जगन्नाथ-वल्लभ-नाटक, कृष्ण-कर्णामृत एवं गीत-गोविन्द से उद्धरण सुनते अपना समय बिताया। इस प्रकार स्वरूप दामोदर तथा राय रामानन्द के सान्निध्य में परम आह्लाद में भजन-

कीर्तन करते श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने दिन रात व्यतीत किये।")

अतएव कल आप उस स्थान पर जा रहे हैं। अपनी कृपा से भगवान जगन्नाथ ने आपको वहाँ बुलाया है। हम सब वहां अपने मनोरथों को परिपूर्ण होते अनुभव करेंगे और यदि हम अपने को विनय पूर्वक अर्पित कर सकें तो हम पूर्ण हो जायेंगे।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते

(ईशोपनिषद, स्तुति)

हम बहुत छोटे हो सकते हैं, किन्तु वह अनन्त है। यदि हम अनन्त के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकें तो जैसे जब आप शून्य से शून्य निकाल लेते हैं तो शून्य शेष रह जाता है, उसी प्रकार जब आप अनन्त से अनन्त घटा देंगे तो अनन्त ही शेष बचेगा। इस प्रकार हम पूर्ण हो जायेंगे। अतः आप अपने हृदय में इस प्रकार की भावनाओं के साथ जगन्नाथ धाम के लिये प्रस्थान कीजिये।

सुख-दुख सर्वत्र है—घर में और बाहर। मुझे निश्चय पूर्वक मालूम है कि आप इन बातों की अधिक चिन्ता नहीं करते। किन्तु तब भी कभी कभी ऐसी धारणायें हमारे मन में आती हैं क्योंकि हमारे पास भौतिक शरीर है। यह शरीर एक बिगड़े हुये छोकरे को भांति है जो कोई भी असुविधा झेलना पसन्द नहीं करता। जितना अधिक आराम इसे मिलता है उतना हो और अधिक आराम यह चाहता है। किन्तु आराम हमारा शत्रु है। हमारे जीवन में ऐसी सुख-सुविधाओं की कोई आवश्यकता नहीं है।

हाथियों के रूप में हमने कितने जंगल खा लिये हैं और हमारी भूख शान्त नहीं हुयी। सूअरों के रूप में हमने विष्ठा के पहाड़ खा डाले हैं और हमारी क्षुधा तृप्त नहीं हुई। जन्म-जन्मान्तर हम सुख के पीछे पड़े रहे हैं, किन्तु हमें वह नहीं मिला है। अतः अब हमें ऐसे सुखों से अपने को अलग कर लेना चाहिये तथा आनन्दोदधि, मूर्तिमान रसागार भगवान कृष्ण की खोज करनी चाहिये। भक्ति-योग में अपने को दीक्षित कराकर हम उन्हें अपनी दृष्टि में बसा

सकते हैं। यह हमारे उच्चतम मिशन को पूरा कर देगा, और यही हमारी उच्चतम अभिलाषा का विषय होना चाहिये।

कृपया आप सब अपने मन में ऐसी इच्छायें लेकर वहां जांय। यह निश्चित है कि वहां आपको कुछ असुविधायें होंगी। हमारे ब्रह्मचारी प्रभु सब बड़े आदरणीय एवं स्नेही हैं और वे आपको सारी सुविधायें देने का पूरा प्रयास करेंगे। किन्तु तब भी आपको कुछ कठिनाई हो सकती है।

कृपया ऐसी भावनाओं के साथ भगवान् जगन्नाथ के पास जाइये। ऐसा सोचिये कि अपनी कृपा से वे हमारी दृष्टि में प्रकट होंगे तथा हमें अपने पवित्र धाम की धूल प्रदान करेंगे। इसलिये हम वहाँ की यात्रा कर सकते हैं। यह हमारी एक मात्र इच्छा और प्रार्थना है।

वांछाकल्पतरूभ्यश्च कृपा-सिन्धुभ्य एव च
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः

अध्याय—३

श्रीवृन्दावन धाम के पथ पर

महाप्रभु जब 'वृन्दावन' का नाम सुनते, वे भाव में, प्रेम में उन्मत्त हो जाते तथा दिव्य प्रेम में अपनी संज्ञा खो देते। वृन्दावन में अपनी यात्राओं का वर्णन करते समय श्रील कृष्ण दास कविराज गोस्वामी कहते हैं, "मैं उनकी मनोदशा का वर्णन तक नहीं कर सकता"

जब महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ की रथ यात्रा के समय पुरी-धाम में होते तो स्वरूप दामोदर गाते तथा ठाकुर उन्माद में नृत्य करते। महाप्रभु स्वयं इतना अधिक गाते नहीं किन्तु स्वरूप दामोदर गाते तथा वे नाचते।

एक अर्थ में वृन्दावन एक बड़ा कठोर स्थल है—चाहे वहाँ जाना हो, वहाँ से आना हो, परिक्रमा करनी हो अथवा वहाँ निवास करना हो, हर एक को बहुत सावधान रहना अत्यावश्यक है। जब जगदानन्द प्रभु वृन्दावन जाना चाहते थे, महाप्रभु ने उन्हें चार निर्देश दिये।

शीघ्र आसिह ताहां न रहिय चिरकाल
गोवर्द्धने ना चढ़िह देखिते गोपाल

(श्रीचैतन्य चरितामृत, अन्त्य लीला १३.३८)

"यदि तुम वृन्दावन जाना चाहते हो, जाओ किन्तु वहाँ अधिक देर तक मत ठहरो। गोपाल ठाकुर को देखने के लिये भी गोवर्धन पहाड़ी पर मत चढ़ो तथा सदैव रूप एवं सनातन के साथ ही ठहरो। उनका मार्ग दर्शन लो तथा उनका सानिध्य कभी मत छोड़ो।" ये उनके तीन उपदेश थे और चौथा था, "व्रजवासियों की नकल मत करो।"

जगन्नाथ प्रभु महाप्रभु के अच्छे मित्र थे और सत्यभामाके अवतार

माने जाते हैं। वे महाप्रभु से असाधारण रूप से जुड़े थे और कभी कभी उनके प्रति असामान्य रूप से उनके प्रति अपना प्यार प्रकट करते थे। महाप्रभु ने उनसे कहा—"न तो व्रजवासियों की नकल करो न ही उनके साथ अधिक घनिष्ठता स्थापित करो।"

पावन धाम में निवास के विधि-विधानों के बिषय में जगदानन्द प्रभु को सब कुछ मालूम था किन्तु महाप्रभु ने ऐसा प्रदर्शित किया जैसे उन्हें (जगदानन्द प्रभु को) उतना ज्ञान न हो। इसलिये उन्होंने कुछ उपदेश दिये "जगदानन्द अकेले वृन्दावन जाना चाहते हैं किन्तु मुझे नहीं लगता कि यह अच्छा है।" इस प्रकार उन्होंने उन्हें कई बार रोका।

अन्ततः महाप्रभु की विरक्त मनोदशा देख कर जगदानन्द बड़े दुखी हुये। वे उसे सहन नहीं कर सके, अतः वे सदैव महाप्रभु के साथ नहीं रुकना चाहते थे। उसकी अपेक्षा उन्हें वृन्दावन जाने की इच्छा थी। उस समय महाप्रभु ने उन्हें ये चार आदेश दिये तथा जाने की अनुमति प्रदान कर दो। "आप जाइये किन्तु वहां अधिक लम्बे काल तक मत ठहरना क्योंकि माया की कुछ करतूत सर्वत्र है। माया इस भौतिक जगत की हर वस्तु को आच्छादित किये है। वृन्दावन हो, नवद्वीप हो अथवा पुरी, माया का कुछ न कुछ आवरण सर्वत्र है और ऐसे स्थानों पर यदि आप अति दीर्घ काल तक रुकते हैं तो हो सकता है माया के चक्र से आकर्षित हो जांय तथा धाम के प्रति कोई अपराध कर बैठें।

अपनी पुस्तक श्रीनवद्वीप भावतरंग में श्रील विनोद ठाकुर कहते हैं—जड़मय भूमि जल द्रव्य यत आर। नवद्वीप धाम में जो कुछ हम देखते हैं, वह सब जड़, सांसारिक है। किन्तु वस्तुतः उस लौकिक रूप के भीतर हम धाम का सच्चा स्वरूप देख सकेंगे जब माया कृपाकर अपना आवरण हटा लेगी।

धामका वहिरंग रूप देखना भी लाभप्रद है, किन्तु यदि हम अपराध करते हैं तो वह हमारे आध्यात्मिक जीवन के लिये हानिकर है। यदि हम उचित रूपसे वास्तविक अतीन्द्रिय धामको नहीं देखसकते

तो, हमें कम से कम उसे विपरीत रूप में—केवल एक भौतिक वस्तु के रूप में न देखने का प्रयत्न करना चाहिये।

जब महाप्रभु श्रीवास पंडित के घर में सात दिन तक महाभावकी स्थितिमें रहे तो भिन्न भिन्न भक्तों ने उन्हें भिन्न भिन्न रूपों में देखा। रामचन्द्र के भक्तों ने महाप्रभु को रामचन्द्र के रूप में देखा, विष्णु के भक्तों ने विष्णु के रूप में, अन्य लोगों ने उन्हें नृसिंहदेव के रूप में देखा तथा और अन्यान्य लोगों ने उन्हें विष्णु के विभिन्न अवतारों के रूप में देखा।

उस समागम में महाप्रभु ने मुकुन्द प्रभु को रोका—"मैं तुम्हें दर्शन नहीं दूंगा।"

मुकुन्द मकान से बाहर खड़े रोते रहे। उनको रोता देखकर भक्तों ने महाप्रभु को सूचना दी, "मुकुन्द बहुत दुखी है और वह गंगा में डूब कर अपना प्राणान्त कर देना चाहता है। वह अपना शरीर रखना नहीं चाहता यदि वह आपके रूप का दर्शन नहीं कर सकता तो। वह लगातार बाहर रो रहा है।"

मुकुन्द ने भक्तों के द्वारा संदेश भेजकर महाप्रभु से पूछा—"मैं आपके रूप का दर्शन कब करूंगा?"

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "करोड़ों जन्मों के बाद वह मेरा दर्शन पा सकेगा।"

यह सुनकर मुकुन्द बहुत प्रसन्न हुआ तथा प्रवेश द्वारके पास नाचने लगा, "अहा, केवल करोड़ों जन्मों के बाद ही मैं महाप्रभु को पुनः देख लूंगा। अब मेरे सामने कोई समस्या नहीं है। उनका दर्शन पुनः पाने के लिये मैं करोड़ों जन्मों को सह लूंगा।"

इसे सुनकर महाप्रभु प्रसन्न हुये और कहा—"अब उसने उन करोड़ जन्मों को पहले ही पार कर लिया है और वह मुझे देख सकता है—वह तत्काल आ सकता है।"

इसलिये भक्तों ने मुकुन्द को बुलाया। "ओ मुकुन्द, आ जाओ, महाप्रभु तुम्हें बुला रहे हैं।"

किन्तु मुकुन्द ने कहा—"महाप्रभु ने कहा है 'करोड़ों जन्मों के बाद' तो मैं अभी वहां कैसे जा सकता हूँ ? यदि मैं अभी जाऊं तो महाप्रभु के सच्चे स्वरूप का दर्शन नहीं कर सकूंगा। मैं केवल करोड़ों जन्मों के बाद ही देख सकूंगा, अभी नहीं—यदि मैं उन्हें अभी देखता हूँ तो यह वास्तव में उन्हें देखना नहीं होगा। यह भ्रम होगा। इसलिये मैं वहां क्यों जाऊं ? मैं अभी वहां नहीं जाना चाहता।"

वास्तविक दृष्टि आवश्यक है तथा वही मुख्य वस्तु है। अन्यथा देवता को देखना, धाम अथवा अन्य कुछ भी देखना आंखों का व्यायाम मात्र है। वह वास्तविक दृष्टि नहीं है और उससे हम सच्चा लाभ नहीं उठा सकते। किन्तु महाप्रभु ने कहा—"अब उसके करोड़ों जन्म हो चुके और वह आ सकता है तथा मुझे देख सकता है।"

मुकुन्द ने अपने को बड़ी प्रताड़ना दी कि उसने गलती की है जिसके कारण पहले महाप्रभु को उसका प्रवेश मना करना पड़ा था। तब महाप्रभु ने उसे अपना सच्चा स्वरूप दिखलाया।

मुख्य बात यह है कि बिना भक्ति और अतीन्द्रिय ज्ञान के न तो हम वास्तविक वृन्दावन को देख सकते हैं न भगवान के सच्चे नाम, रूप, गुण और लीला को ही। ये सब अलौकिक हैं और इन्हें हम अपने भौतिक नेत्रों से नहीं देख सकते। मुख्य बात यह है।

यदि हम वृन्दावन जांय अथवा नवद्वीपमें बास करें तोभी सत्य यही है। किन्तु फिर भी ये स्थान दिव्य धाम हैं और वे गरिमा विकीर्ण करते हैं। यदि हम वहां बिना किसी अपराधके बास करें तो उसकी एक बूंद का स्पर्श कर सकते हैं। उस रूप में हम उस आभा, उस ज्योति की झलक पा सकते हैं। धाम माया से आवृत है, किन्तु तब भी वहां कुछ तेज है और हम उस आभा अथवा तेज का स्पर्श पा सकते हैं यदि हम वहां निष्कपट भाव से बास करें। किन्तु यदि हम वहां बहुत लम्बे काल तक रहते हैं तथा वहां से अधिक निकटता स्थापित कर लेते हैं तो संभव है उस चमक को हम खो बैठें। वह आभा प्रकाश जैसी है किन्तु उससे भी अधिक वह अतीन्द्रिय लोक है और पूर्णतया चेतन है।

यह हमें शिक्षा देने के अभिप्राय से था कि महाप्रभु ने जगदानन्द को सलाह दी, "वृन्दावन में लम्बे काल तक मत रुकना क्योंकि उससे वहां अपराध करने की संभावना अधिक हो जायगी तथा गोवर्धन पहाड़ी पर मत चढ़ना क्योंकि वह पहाड़ी कृष्ण का रूप है।"

शास्त्रों में उल्लेख है कि गोवर्धन के दो रूप हैं—एक दास का रूप है तथा दूसरा रूप स्वयं कृष्ण का है जो भक्तों से सेवायें स्वीकार करते हैं। इसलिये महाप्रभु ने जगदानन्द को उपदेश दिया, "गोवर्धन-पहाड़ी के ऊपर मत जाना और जब तुम वृन्दावन में हो तो निश्चित रूप से रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी के साथ रहो। उनके मार्गदर्शन में कोई समस्या खड़ी ही नहीं होगी और अपराध करने के अवसर बहुत कम होंगे। यदि तुम उनके साथ रहोगे तो तुम वहां कोई अपराध नहीं करोगे। रूप-सनातन के साथ निवास भी एक भारी उत्तरदायित्व है किन्तु मेरे आदेश से तुम वहां सुरक्षित रह सकते हो और उनका अनुगमन कर सकते हो।"

बाद में एक लीला हुयी और जगदानन्द सनातन से बहुत रुष्ट हुये—किन्तु वह उनकी लीला है। जगदानन्द प्रभु महाप्रभु के एक पार्षद हैं, किन्तु महाप्रभु हमें सदैव अपने भक्तों के माध्यम से शिक्षा दे रहे हैं।

मुख्य सिद्धान्त है कि जब हम वृन्दावन जांय तो किसी भक्त के अनुचर अवश्य बनें। अपने को समुचित सिद्धान्त में सुरक्षित रखने के लिये हमें किसी सच्चे भक्त का आश्रय लेना होगा, अन्यथा यदि हम सोचें, "हम वृन्दावन में अकेले भजन करेंगे, तो यह बड़ा अलाभकर हो सकता है।

श्रील प्रभुपाद भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के कई भक्त वहां भजन करना चाहते थे किन्तु श्रील प्रभुपाद सरस्वती ठाकुर उनसे सहमत नहीं हुये। न केवल उतना ही अपितु जब वे स्वयं वृन्दावन गये तो कहा, "मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ, मैं यहां एक भी सच्चा, पूर्ण भक्त नहीं देखता।"

उस समय वृन्दावनमें बहुतसे बाबा जी थे जिनमें से कई सिद्ध-महापुरुषों के रूप में बड़े विख्यात थे। किन्तु अपने हाथों में अपना माथा पकड़कर श्रील प्रभुपाद सरस्वती ठाकुर ने कहा, "मैंने वृन्दावन में एक भी पूर्ण वैष्णव नहीं देखा। यह मेरा दुर्भाग्य है।"

इसलिये अपने ज्ञान के प्रति हमें सजग रहना होगा। ज्ञान एक प्रकार की शक्ति है और उसका प्रयोग बुद्धिमत्ता से करना चाहिये। यह सावधानी हमें ग्रन्थों में दी गयी है। अतीन्द्रिय ज्ञान एक भिन्न वस्तु है, फिर भी यदि हम सांसारिक ज्ञान का प्रयोग भी बुद्धिमत्ता से करें, तो हमें कुछ लाभ अवश्य होगा। यही कारण था कि महाप्रभु ने जगदानन्द प्रभु से कहा—"जब तुम वृन्दावन में हो तो अपने ज्ञान का उपयोग बुद्धिमत्ता से करो और तुम्हारा लाभ होगा। रूप और सनातन गोस्वामी का अनुगमन करो, उनकी साधना की नकल करके नहीं अपितु उनके निर्देशों का पालन करके।

शास्त्र हमें परामर्श देते हैं, 'जो कृष्ण कहते हैं उसे अवश्य करो, किन्तु वे जो कुछ करते हैं उसकी नकल करने का प्रयास तुम्हें नहीं करना है।"

श्रीमद्भागवत की सलाह है, "कृष्ण अथवा उनके तेजस्वी भक्तों के अनुकरण के बारे में सोचो तक मत। भगवान शंकर ने विष का समुद्र पी लिया, पर वह तुम्हारे बश का नहीं है यदि तुम वैसा प्रयास करते हो तो मरोगे।"

शास्त्रादि के द्वारा हम अतीन्द्रिय लोक के विषय में बहुत कुछ सुनते हैं किन्तु यदि उस ज्ञान का उपयोग बुद्धिमानी तथा सावधानी से करें तभी लाभ होगा अन्यथा हम घाटे में रहेंगे। कुछ न कुछ खतरा सर्वत्र है, इसलिये हमें सावधानी बरतनी है।

वृन्दावन धाम ट्रैंसेन्डेन्टल (चिन्मय) है, यद्यपि 'ट्रैंसेन्डेन्टल, शब्द उसका सही वर्णन करता प्रतीत नहीं होता। हम उसे 'आध्यात्मिक जगत' भी कह सकते हैं किन्तु यह भी पर्याप्त नहीं है। वृन्दावन धाम चिन्मय-धाम है, अलौकिक है, चेतन है, किन्तु वह इन सबसे अधिक भी है।

रूप गोस्वामी ने उस जगत् तथा उस कोटि के सुखोन्माद के सम्बन्ध में एक सुन्दर श्लोक रचा है—

व्यतीत्य भावनावर्त्म यश चमत्कार भारभूः
हृदि सत्त्वोज्ज्वले वाढं स्वादते सरसो मतः

वे कहते हैं व्यतीत्य भावना, वह स्तर ऊसपे उपर और परे है जहाँ हम अपने ज्ञान के पूर्ण विस्तार द्वारा पहुँच सकते हैं। हमारी समझ से वह परे है। वह हमारे लिए अचिन्त्य है, किन्तु साथ ही साथ वह इतना सुन्दर है कि हम उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। किन्तु वह हमारी अपनी सम्पत्ति है और उसे प्राप्त कर सकते हैं। न केवल हम उसे पा सकते हैं अपितु हमें उसे अवश्य प्राप्त करना है अन्यथा हमारे लिये कोई आशा नहीं है। आज या कल, अथवा हो सकता है करोड़ों जन्मों के उपरान्त ही सही, हमें उसको पाना अवश्य है। श्रीमद्भागवत कहता है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा (११.२० १७)

हमें इस मानव जन्म के सुअवसर का उपयोग तुरन्त करना है। इस समय हमें मानव देह प्राप्त है और कृष्ण चेतना की साधना के लिये यह बहुत उपयुक्त हैं। गायों, घोड़ों, पेड़ों जैसे अन्य शरीरों में चेतना अपर्याप्त है। हम भाग्यशाली हैं कि इस समय हमें मानव देह उपलब्ध है—न केवल मानव देह अपितु एक परिष्कृत मानव शरीर जिसकी चेतना एक उपयुक्त स्थान पर जन्म लेने के कारण विकसित है। हम वन-मानुषों की भाँति नहीं हैं। इसलिये विकसित चेतना सम्पन्न मानव शरीर प्राप्त होते हुये भी जो कृष्ण चेतना की साधना नहीं करता वह एक आत्म-घाती व्यक्ति है। कोई निश्चितता नहीं है कि हमें दूसरा अवसर मिलेगा अतः हमें इस सुअवसर का लाभ उठाना चाहिये।

भक्त : श्रील महाराज, अंग्रेज-सभ्यता में हमने पहले कभी गोलोक अथवा चिन्मय धाम के बारे में नहीं सुना। अंग्रेजी में इन

बातों के वर्णन के लिये ठीक शब्द नहीं हैं। अतः हम उन्हें उपयुक्त ढंग से कैसे व्यक्त करें ?

श्रील गोविन्द महाराज-किसी न किसी प्रकार हमें वर्णन का प्रयास करना चाहिये। हम एक सामान्य निर्देश देने का प्रयत्न करेंगे। श्री रूप गोस्वामी ने भी अपने श्लोक में ऐसा किया—

व्यतीत्य भावनाधर्म यश चमत्कार भारभूः
हृदि सत्त्वोज्ज्वले वाढं स्वादते सरसो मतः

यह तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी पूर्ण सभ्यता आदि से परे है। हो सकता है कि हम अपनी सभ्यता के पूर्ण विस्तार को भी जान लें, किन्तु यह उससे भी परे है।

भक्त—रूप गोस्वामी संस्कृत एवं बंगाली शब्दों के प्रयोग द्वारा इसे व्यक्त कर सकते हैं और संभव है आप भी ऐसा करलें। किन्तु हम 'दिव्य' शब्द का अनुवाद कैसे करें ? यदि हम 'डिवाइन' कहें तो उससे केवल स्वर्ग का संकेत मिलता है, और यदि हम 'कान्शसनेस' कहें तो उसका तात्पर्य केवल सामान्य चेतना होगा। न तो 'गोलोक' के लिये कोई शब्द है न 'चिन्मय' के लिये कोई शब्द है। हम अंग्रेजी में अनुवाद करना चाहते हैं किन्तु हमारे पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं। तब हम क्या करें।

श्रील गोविन्द महाराज-हम अपनी शक्ति भर हर वस्तु को अभिव्यक्त करने का पूरा प्रयास करेंगे।

संभव है हमारी अपनी समझ भी सत्य न हो किन्तु हमारी भावना है कि वह वस्तुतः सत्य है। स्वयं अपने बचपन में जब मैं राधा-कृष्ण की लीलाओं के विषय में गीत सुनता तो उन केलियों की कल्पना करते करते कभी कभी बैठ जाता जैसे अचेत हो गया हूँ। मैं देखने लगता कि वहाँ क्या हो रहा है, कृष्ण क्या कर रहे हैं, उनके सहचर क्याकर रहे हैं तथा ऐसी अनेक बातें। अब मैं भिन्न प्रकार से सोचता हूँ किन्तु उस समय मैं सोचता कि जो कुछ मैंने देखा वह सत्य था। और जबमैं गोष्ठय-लीला गीतोंको सुनता अथवा कभी कभी गातातो पूरी तरह आकर्षित—न केवल आकर्षित अपितु पूर्णतया वशीभूत हो जाता। उस जादूसे सम्मोहित होकर मैं अपने बारे में भी सोचता जैसे मैं उस दल में गोचरण हेतु जा रहा हूँ। वह एक श्रेष्ठ

वस्तु है इसमें संदेह नहीं, किन्तु अब मैं समझ सकता हूं कि वह एक प्रकार का भ्रम था, तथा श्रील गुरुमहाराज की कृपा से मैं उसमें अत्यधिक फंसने से बच गया। इस प्रकार मेरे ऊपर कोई बुरी प्रतिक्रिया नहीं हुयी।

अब मैं उस पूरे क्षेत्र को एक दूरी से पूजा कर रहा हूँ। किन्तु उस समय मैं सोच रहा था और बड़ी गहरायी से अनुभव भी करता था कि मैं वास्तव में उस लीला का अंग हूँ। मैं समझ सकता हूँ कि वह कुछ था पर वास्तविक वस्तु नहीं। इसलिये बहुत सी वस्तुयें हो सकती हैं, किन्तु सब कुछ ऐहिक अवधारणा से घुला-मिला है।

श्रील गुरुमहाराज और श्रीपाद जाजावर महाराज साथ साथ बातचीत किया करते थे, और कभी कभी वे बातें बड़ी गुरुतर हो जाती। श्रील गुरुमहाराज सदैव चेतना के पक्ष का समर्थन करते जब कि श्रीपाद जाजावर महाराज सदा हर वस्तु का विश्लेषण एवं वर्गीकरण करते—वे वस्तुओं को विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखते। विश्लेषण करना सदैव बुरा ही है। ऐसी बात नहीं है। किन्तु जब आप चेतना के धरातल में खड़े होना चाहते हैं, और यदि उसमें खड़े हो सकते हैं, तो आप सब कुछ देख सकते हैं, अन्यथा नहीं। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर कहते है—

विचक्षण करि, देखिते चाहिले
हय आँखि अगोचर

यदि आप हर वस्तु का विश्लेषण करना चाहेंगे तो वह आप की दृष्टि से ओझल हो जायगी। यदि आप उस विषय को छानबीन करने एवं विश्लेषण के उद्देश्य से देखेगें तो वह लुप्त हो जायेगी। यदि आप वह दृष्टिकाण अपनाते हैं। तो वह आप के लिये बड़ा कठिन होगा। किन्तु यदि आप वास्तविक चेतना के धरातल में खड़े होते हैं तो हर वस्तु आपके समक्ष प्रकट हो जायगी।

दो प्रकार के आभास हैं—वास्तविक आभास एवं मिथ्या आभास। जहाँ भौतिक चेतना है कुछ उद्भासित हो रहा है, किन्तु हम कह सकते हैं कि वह भ्रम है। वह भ्रामक आभास कभी कभी

योगियों की शक्ति के प्रयोग द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है, अथवा, नशा करने से भी उत्पन्न हो सकता है। किन्तु वह सब भ्रामक है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण द्वारा योगी चेतना के किसी धरातल में ठहर सकते हैं परन्तु वह कृष्ण चेतना का वास्तविक धरातल नहीं है।

यमादिभिर्योगपथैः, काम-लोभ-हतो मुहुः।
मुकुन्द-सेव्या यद्वत. तथात्मध्या न शाम्यति ॥ श्रीमद्भा १.६.३६

जो कुछ हम योगाभ्यास द्वारा देख सकते हैं यथा, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि द्वारा, वह भी छाया है, वास्तविक वस्तु नहीं। योग द्वारा हम अधिक से अधिक परमात्मा का प्रकाश देख सकते हैं तथा उसके साथ कोई सम्पर्क जोड़ सकते हैं। किन्तु उस पद्धति से हम कृष्ण की लीलाओं एवं कृष्ण के जगत को नहीं पा सकते।

श्रीब्रह्मसंहिता में कहा गया है—

प्रेमांजन- च्छुरित- भक्ति- विलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति
यंश्याम सुन्दरम् अचिन्त्य-गुण-स्वरूपं
गोविन्दम् आदि पुरुष तमहम् भजामि

"जब मेरा हृदय कृष्ण प्रेम से लबालब हो और मेरे नेत्र भक्ति-रस से सज्जित हों तथा वे उस अलौकिक दृष्टि को प्राप्त करलें, तो मैं अपने हृदय तथा सर्वत्र वृन्दावन की उन लीलाओं को देख सकूँगा।"

भक्ति की आवश्यकता है। श्रील रूप गोस्वामी स्पष्ट कहते हैं कि केवल भक्ति द्वारा ही कोई सब कुछ देख और अनुभव कर सकता है।

कभी कभी भक्त श्रील गुरुमहाराज से पूछते, "जब मैं हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करता हूँ तो उस समय क्या सोचूं ? हमें देवता के विषय में सोचना चाहिये अथवा भक्तों के सम्बन्ध में अथवा उनके परिकर के विषय में ?

श्रील गुरु महाराज उत्तर देते, "नहीं, कुछ नहीं—तुम केवल श्रीनाम से प्रार्थना करो कि "कृपया अपना रूप दिखा दें, और बिना

किसी हिचकके कीर्तन करो। जब वे चिन्मय नाम-प्रभु तुम्हारे हृदय में प्रकट होंगे, तो तुम्हारा शरीर भी चिन्मय-देह हो जायगा।"

शास्त्रों ने भक्ति-साधना के लिये अनेक उपदेश दिये हैं। वे एक विशेषज्ञ के निर्देशों की भांति हैं जो एक वस्तु-विशेष को बना सकता है। इलेक्ट्रॉनिक्स का एक विशेषज्ञ हर दिन कई टेप-रिकॉर्डर अथवा रेडिओ बना सकता है। उसके लिये यह बहुत आसान है। वह कुशल है अतः वह दूसरों को सिखला सकता है कि उस कार्य को कैसे करें "यदि तुम इस प्रकार कार्य करो तो तुम भी निष्णात हो जाओगे तथा वैसा करना तुम्हारे लिये सरल हो जायगा।"

शास्त्र इसी प्रकार हमारे पास आते हैं। व्यासदेव एवं अन्य ऋषि-मुनि बड़े निष्णात हैं और उनका कथन है, "यदि तुम इस प्रकार अभ्यास करो, तो यह बड़ा आसान है।" किन्तु वास्तव में उस धरातल तक जाना बड़ा कठिन है। हम पाते हैं कि उस दिशा में अनेक विघ्न-बाधायें एवं उपद्रव हैं।

जब कोई एक जेनरेटर चलाना चाहता है तो पहले कुछ क्रैंक आवश्यक है। उसके लिये बड़ी शक्ति की आवश्यकता है और वह कठिन तथा कष्टकर है। किन्तु एक बार जेनरेटर के चल जाने पर वह पूरी ऊर्जा उत्पन्न कर सकता है—हो सकता है एक हजार किलोवाट क्षमता अथवा और अधिक। यद्यपि जब आरंभ में ऊर्जा उत्पन्न करने हेतु हाथ से इन्जन चलाना चाहता है तो कठिनाई होती है। इसी प्रकार हमारी वर्तमान अवस्था हमारे लिये कठिन है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु एक बार जब हम गति पकड़ लेंगे तो सब आसान हो जायगा। साधनावस्था में किसी को कुछ अनुभव आते हैं, कुछ सुख, स्वच्छता, उत्साह एवं अन्य अनेक वस्तुयें।

प्रथम श्रेणी का स्तर, सर्वोच्च स्तर वह है जब हम कृष्ण चेतना के धरातल में ठहर सकें और वही परमहंस अवस्था है। अनेक स्थानों में यह उल्लेख है कि हर वस्तु कृष्ण से आती है तथा हर वस्तु कृष्ण से सम्बन्धित है। उस चेतना में होना परमहंस अवस्था है। जब वह अवस्था आयेगी हम हर वस्तु के साथ सरलता

से सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे। सारे पर्यावरण के बीच, हम हर वस्तु को सहन कर सकेंगे।

जब कृष्ण ने पांचों पाण्डवों को उनके राज्य में प्रतिष्ठापित किया तो उन्होंने कुन्ती देवी से कहा, "अब हर वस्तु यहाँ स्थापित हो चुकी है। यहां आनन्द से रहो। मैं अपने द्वारिका, अपनी राजधानी जा रहा हूँ तथा देखूंगा कि वहां क्या हो रहा है।" कृष्ण का रथ द्वारिका जाने के लिये तैयार खड़ा था और जब वे सबके सामने खड़े थे कुन्ती देवी वहां पहुँची और प्रार्थना की—

विपदः सन्तु नः शाश्वतत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् श्रीमद्भ० १.८.२५

"मेरे प्रिय कृष्ण आप सोचते हैं अब हम बड़े सुखी हैं, किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। हम बड़े दुखी हैं क्योंकि आप द्वारका जा रहे हैं। मैं यह राज्य नहीं चाहती। मैं सब कुछ छोड़ सकती हूँ यदि केवल आप यहां रुके रहें। किन्तु अब आप यहां रुकेंगे नहीं इसलिये मैं प्रार्थना करती हूँ कि विपत्ति के वे पूर्व दिन हमारे पास पुनः लौट आयें, और ये 'सुखद' दिन हम से विदा हो जांय। हमें वे विपदा के समय ही चाहिये क्योंकि विपत्ति काल में आपका सान्निध्य प्राप्त होता है तथा आपकी उपस्थिति से सारी गरिमा आ जाती है। जो आपका मुखार्विन्द देख लेगा वह इस मृत्यु लोक में पुनः जन्म नहीं लेगा।"

मुख्य वस्तु है कि सर्वप्रथम जब हम अपना भक्ति-जीवन आरंभ करते हैं तो कुछ कठिनाइयां अवश्य आती हैं, किन्तु जब हम एक बार चल पड़ते हैं तो बड़ी आसानी से यात्रा चलती रहती हैं। हम कृष्ण चेतना की साधना को एक बड़ी सुगम वस्तु पायेंगे। जब हम श्रद्धा के जगत में स्थापित हो जायेंगे तो हमारे सामने कोई समस्या नहीं रहेगी। आवश्यक केवल यह है कि हम श्रद्धा के धरातल में जम जायं, फिर हमारा रथ अबाध गति से चलेगा। यद्यपि आरंभिक काल कठिन है क्योंकि हमारी आत्मा अहंकार द्वारा आच्छादित है और हम अहंकार और अपनी आत्मा में भेद नहीं

कर सकते। इसलिये उचित विवेक करने हेतु आरंभिक स्वच्छीकरण साधनाओं का करना आवश्यक है।

अहंकार निवृत्तानां केशवो नहि, दूराग:
अहंकार-युतानां हि, मध्येपरवत-राशय:
(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

हमारा अहंकार ही बाधक है। अहंकार का अर्थ है मिथ्याभिमान, किन्तु वह परिभाषा बहुत सही नहीं है। अहंकार का अर्थ है एक जगत विशेष—अनेक वस्तुओं से भरा एक सम्पूर्ण जगत। "मेरी माँ, मेरा बाप, मेरा भाई, मेरी पत्नी, मेरा घरा, मेरा बगीचा मेरी हर वस्तु। तथा मैं यह कर सकता हूँ, मैं वह कर सकता हूँ, मैंने यह किया है, और मुझ से पहले मेरे पिता ने 'यह' किया, वह किया—।" अहंकार का जगत बहुत बड़ा जगत है। वह केवल अहंकार नहीं है, केवल 'अहंकार' कहना पर्याप्त नहीं है, अपितु वह एक प्रसरणशील जगत है। यदि हम उस अहंवादी जगत से अपने को अलग कर सकें तो हम श्रद्धा के जगत में तत्काल अपने को स्थापित कर सकते हैं। तथा उसके पश्चात हमें कोई समस्या नहीं होगी। इसलिये परमहंस अवस्था को मैंने उस धरातल के रूप में बताया जिसमें वह पूर्व चालित 'जेनरेटर' को भांति गति पकड़ चुका है। श्रील प्रभुपाद भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस जगत में हमें अपने आचरण, कृतियों एवं भाषण द्वारा परमहंस वर्ग की व्यावहारिक शिक्षा देने आये।

लौकिक नियम के अनुसार बहुत सी बातें गलत हो सकती हैं किन्तु सब कुछ कृष्ण से सम्बन्धित है। श्रीमद्भगवद्गीता (१८. १७) में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमॉल्लोकान्न न हन्ति न निबध्यते॥

"वह जो अहंकार (निरपेक्ष के प्रति विकर्षण से उत्पन्न होने वाला)से मुक्त हैं और जिसकी बुद्धि लिप्त है (सांसारिक कार्यों में)—यदि वह जगत के सारे जीवों को मार देता है तो भी वह मारता बिल्कुल नहीं, न ही वह हत्यारे के परिणामों को भोगता है।"

कृष्ण जो बिन्दु स्पष्ट करना चाहते हैं वह यह है कि यदि तुम प्रपंचातीत धरातल में निष्ठा के साथ विद्यमान हो तो तुम्हें किसी पाप का स्पर्श नहीं होगा।

एक साधक के जीवन में कई लक्षण प्रकट होते हैं। प्रथम चिन्ह है उत्साह—तथा श्रील स्वामी महाराज की प्रेरणा से कई नवागन्तुक अपने उपदेशों में बड़े उतावले थे। 'मेरे गुरु ने कहा कि मैं उपदेश करूँ तथा सब कुछ कृष्ण का है, सब कुछ कृष्ण की सम्पत्ति है, और हम कृष्ण के दास हैं। अतः हम हर वस्तु का उपयोग करें।" इस प्रकार उन्होंने पश्चिम में बड़े उत्साहपूर्वक उपदेश देने आरंभ किये। हमारे भौतिक नियम में उदाहरणार्थ एक होटल से सम्पत्ति लेना अपराध है, किन्तु उन्होंने उसकी चिन्ता नहीं की। उन्होंने सोचा, "वे इस लिये अपराध कर रहे हैं क्योंकि उनकी मानसिकता है, "कि यह मेरी सम्पत्ति है, मेरा होटल है'। किन्तु वस्तुतः वे सब चोर हैं, हम चोर नहीं हैं।"

निस्सन्देह श्रील स्वामी महाराज ने कृष्ण चेतनाकी वास्तविक धारणा प्रदान की और यदि हम सौ प्रतिशत शुद्ध हैं तो हमारे लिये कोई समस्या नहीं है। किन्तु यदि हम शत प्रतिशत शुद्ध नहीं हैं, और यदि नकल करने की कोई प्रवृत्ति शेष है, तो कुछ समस्यायें आयेंगी ही। नकल को पहचान करना कठिन है—और यदि पहचान नहीं सकते कि क्या असली है क्या नकली, हमारे सामने समस्यायें आयेंगी। अतः यह विवेक करना आवश्यक है कि क्या नकली है, क्या शुद्ध।

श्रील स्वामी महाराज ने कृष्ण चेतना की लहर को सम्पूर्ण विश्व में फैलाया, और अब समय आ गया है कि श्रील गुरु महाराज के विचारों का प्रचार किया जाय। मेरी आशा एक गहरी आशा है—मैं सदैव एक बड़े रूप में आशा कर रहा हूँ—और मैं सतत् चकित हूँ कि कृष्ण चेतना समूचे संसार में किसी प्रकार प्रसारित हो रही है।

महाप्रभु ने कहा—

पृथिवि ते आछे यत नगरादि-ग्राम
सर्वत्र प्रचार हैबे मोर नाम

(श्रीचैतन्य चरितामृत, आदि लीला १७ २०३)

"मेरा पावन नाम-संसार के हर नगर ग्राममें प्रचारित होगा। यह एक चमत्कार है कि यह केवल कुछ वर्षों में होगया। यदि हम उसके बारे में सोचें तो विश्वास नहीं होता कि यह संभव कैसे है। श्रील स्वामी महाराज ने अपने प्रथम वर्ष में अमेरिका में कठिन परिश्रम किया किन्तु वे कुछ भी प्राप्त करने में सफल नहीं हुये। एक साल तक उन्होंने उस जेनरेटर को चलाने के लिये अथक परिश्रम किया, किन्तु जब वह स्टार्ट हो गया, तो तत्काल सारा विश्व कृष्ण चेतना से जगमगा उठा!

हो सकता है कि कभी कभी हम से कुछ अपराध हो जाते हैं। कदाचित लगभग चालीस प्रतिशत का अपना समय हम कोई अपराध करने में ही बिताते हैं। यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। क्योंकि हमने इस भौतिक जगत में जन्म लिया है, हमारे पास कोई न कोई कार्य करने के सिवा कोई उपाय नहीं है। किन्तु संसार में अपराधों की इतनी अधिकता के बावजूद यह आश्चर्य है कि कृष्ण चेतना इतने व्यापक रूप से पूरे विश्व में कैसे प्रसारित हुयी। श्रील स्वामी महाराज के उपदेशों का परिणाम देखकर हमें बड़ा उत्साह मिला है।

श्रील प्रभुपाद भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने भी कृष्ण चेतना के प्रचार हेतु कठिन परिश्रम किया। जब गौड़ीय मठ सर्व प्रथम आरंभ हुआ, सारे नकली सम्प्रदाय बड़े भयभीत हो गये तथा श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के मिशन को नष्ट करने पर आमादा हो गये। वे उनकी भी हत्या करना चाहते थे, किन्तु सफल नहीं हुये। उन्होंने कठिन परिश्रम करके भारत में चौंसठ केन्द्र स्थापित किये तथा अपने भक्तों को भारत से बाहर जर्मनी, इंग्लैण्ड तथा अमेरिका भी भेजा। उस रूप में भी उन्होंने प्रयास किया किन्तु विदेशों में प्रचार में उतने सफल नहीं हुये। उनके तिरोभाव के पश्चात् उनके मिशन को कुछ आघात लगा किन्तु श्रीपाद बन

महाराज तथा श्रीपाद गोस्वामी महाराज सरीखे उनके कुछ शिष्यों ने उपदेश देने में कठिन प्रयास किये।

श्रीपाद गोस्वामी महाराज श्रील प्रभुपाद सरस्वती ठाकुर द्वारा लन्दन भेजे गये थे। एक समय उनके पास बिल्कुल पैसे नहीं थे, यहां तक कि एक पाई भी नहीं। उनके पास एक स्टोव था जिसे जलाकर भोजन बनाने के लिये चार पैसे डालना आवश्यक था। किन्तु उनके पास उतने पैसे भी नहीं थे। उन्होंने सोचा, "अब क्या करना चाहिये ?" इसके पश्चात् शीघ्र ही जमादार ने उन्हें एक लिफाफा दिया तथा बतलाया कि वह उसे मेज के नीचे अथवा शायद दरवाजे के पास मिला। "उसने कहा देखिये वह क्या है।" श्रीपाद गोस्वामी महाराज ने उसे खोला और देखा कि उसमें १३०० पाउन्ड का चेक रखा है। वे आश्चर्य चकित रह गये।

उससे पूर्व उन्होंने बड़ौदा के महाराज को लिखा था, "पैसे के अभाव में मैं बड़े संकट मे हूँ, कृपया मुझे दान रूप में कुछ भेजिये"—और अब वह पैसा आ गया था। उनकी तात्कालिक चिन्ता कुछ नाश्ता करने की थी अन्यथा आहार के अभाव में वे बीमार पड़ जाते। किन्तु उस पैसे को प्राप्त कैसे करें ? उस प्रातः वे चेक भुनाने हेतु बैंक गये, पर चूंकि उनका खाता नहीं था, बैंक के बाबू ने उनसे क ई पहचान मांगी। "आप गोस्वामी महाशय हैं ? क्या आप उसे दिखला सकते हैं ?" उनके पास पहचान का कोई प्रमाण नहीं था तथा भारतीय होने के नाते वे कदाचित उस विषय में अधिक चिन्तित भी नहीं थे। यद्यपि उसके पूर्वदिन वे एक सभा में गये थे तथा उस दिन अखबार में उनका फोटो प्रकाशित था। सहसा उन्होंने बैंक की खिड़की पर पड़ा वह अखबार देखा तथा बैंक के अधिकारी को उस ओर इशारा किया। "मैं उस मीटिंग में सम्मिलित हुआ था, देखिये वह रही मेरी फोटो।" तब उस व्यक्ति ने उन्हें तुरन्त पैसे का भुगतान कर दिया।

जैसे तैसे श्रीपाद गोस्वामी महाराज ने लन्दन में कठिन परिश्रम किया परन्तु उतने सफल नहीं हुये। हो सकता है इंग्लैण्ड की धरती में उन्होंने कुछ बीजारोपण किये किन्तु यह कटु सत्य है

कि वे कोई ठोस परिणाम प्राप्त करने में सफल नहीं हुये। श्रीपाद वन महाराज ने भी जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका में प्रयास किया परन्तु वे भी उतने सफल नहीं हुये।

कई वर्षों बाद श्रील स्वामी महाराज ने प्रयत्न किया और वे सफल रहे। उन्होंने भी भारत में प्रचार करने का प्रयास किया था पर अधिक सफल नहीं हुये किन्तु उनको इच्छा सदैव पश्चिम जाकर प्रचार करने की रही और अन्ततः उन्होंने किया भी उसे। वह इतिहास आप जानते हैं – एक साल तक वे वहां कुछ जागरण करने में लगे रहे। फिर कृष्ण एवं नित्यानन्द प्रभु की कृपा से वह अभियान वास्तव में चल पड़ा और उसकी ज्योति इतने कम समय में सारे संसार में फैल गयी। मैं चकित हूँ तथा मेरा हृदय आनन्द विभोर भी है। मैं सोच रहा हूँ, "यह हुआ कैसे ?"

जब बौद्ध धर्म, शांकरवाद अथवा अन्य वाद सामने आये तो जनता द्वारा उन्हें स्वीकार किये जाने में एक लम्बा समय लगा। अथवा किसी सिद्धान्त विशेष के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु कभी कभी किसी राजा अथवा घटना-विशेष का सहारा लेना पड़ा है। जैसा भी रहा हो सामान्यतया उसे समय बहुत लम्बा लगा। किन्तु पांच से दस वर्ष के भीतर श्रील स्वामी महाराज ने कृष्ण चेतना को पूरे विश्व में फैला दिया। तथा महाप्रभु ने इसकी भविष्यवाणी की थी—

पृथिवीते आछे यत नगरादि-ग्राम
सर्वत्र प्रचार हैवे मोर नाम

जब हम इसे देखते हैं तो अपने हृदय में बड़ी प्रसन्नता अनुभव करते हैं तथा सोचते हैं, "यहां कोई अलौकिक वस्तु अवश्य उपस्थित होनी चाहिये।" हम उसे देख सकें अथवा न देख सकें, वह दूसरी बात है, किन्तु वहां उसकी उपस्थिति का अनुभव अवश्य कर सकते हैं।

अतः मैं तत्काल भक्तों को किसी त्रुटि की ओर नहीं देख रहा हूँ। पूर्व अथवा पश्चिम में जो कुछ भक्तगण कर रहे हैं, मैं सोचता

हूँ बड़े अच्छे ढंग से कर रहे हैं। मैं सहसा श्रील स्वामी महाराज को स्मरण करता हूँ और अनुभव करता हूँ, "हो सकता है उनसे थोड़ी गलती हो रही हो, किन्तु वह कोई समस्या नहीं है।"

मुझे नहीं मालूम कि अब कृष्ण तथा महाप्रभु की क्या इच्छा है, किन्तु असंदिग्ध रूप से कृष्ण चेतना का प्रसार हुआ है, इसलिये बद्ध जीवात्माओं के लिये वास्तविक सेवा का अवसर है। और मैं सोचता हूँ कि एकनएक प्रकारसे उसे और अधिक फैलना चाहिये तथा उस प्रकार हर एक लाभान्वित होगा।

इस संसारमें हम अनेक आचार्योंको देखते हैं। संभवतः वे सब पूर्ण नहीं हैं पर जैसे तैसे वे प्रयासरत हैं और कम से कम कुछ आरंभिक तैयारी कर रहे हैं। फसल बोते समय पहले जुतायी आवश्यक है, फिर बीज की बुआयी और तब सिंचायी इत्यादि। उस रूप में हम कह सकते हैं कि कार्य बड़े सुन्दर रूप में अग्रसर है।

जब युद्ध छिड़ता है, अनेक सैनिक मरते हैं। इसी प्रकार अनेक महिलायें, बच्चे, सम्पत्ति आदि नष्ट होते हैं युद्ध में ऐसा अपरिहार्य है, यह होगा ही। इस प्रकार यह भी एक युद्ध जैसा ही है—माया, दुर्गा के साथ युद्ध। यह एक विद्रोह है। श्रील स्वामी महाराज, श्रील गुरु महाराज तथा अन्य लोगों द्वारा एक क्रान्तिकारी वातावरण की सृष्टि हुयी है। कुछ हताहत होंगे किन्तु दुर्गा के कारागार के फाटक तोड़ दिये गये हैं। अन्यथा यह कैसे है कि सारे संसार में लोग 'हरे कृष्ण' का कीर्तन कर रहे हैं? क्रान्ति पहले ही फूट चुकी है और युद्ध में कुछ हताहत हो सकते हैं, किन्तु फाटक टूट चुका है और बन्दी वैकुण्ठ के लिये भाग रहे हैं।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने राधा-कृष्ण की लीलाओं का बड़े समादरणीय रूप में वर्णन किया है। उनके लेखों से हम समझ सकते हैं कि हमारा सर्वोच्च लक्ष्य क्या है। वर्तमान समय में विविध रूपों में कुछ कठिनायी हो सकती है, किन्तु यह विशेष प्रकार का ज्ञान, यह कृष्ण चेतना माया के अधीन सुषुप्त कैदियों के पास आयेगी।

बन्दी सो रहे थे किन्तु अब इस चेतना ने उन्हें जगा दिया

है, कारागार में एक क्रान्ति का सूत्रपात हो चुका है और वे पलायन कर रहे हैं। हम बड़े भाग्यशाली हैं कि यह हमारे समय में हुआ है और हम उसे देख रहे हैं। वह अतीत में अथवा भविष्य में हो सकता था किन्तु हमारा सौभाग्य है कि हम क्रान्ति को इस समय घटित होते देख रहे हैं। हनने बहुत कुछ देखा है और हमें सेनापतियों तथा सैनिकों का साथ मिला था—वह भी हमारा भाग्य ही है। अब यदि हम एक सामंजस्य में अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर हो सकें तो वह अन्ततोगत्वा हम सबके लिये लाभप्रद होगा।

हरे कृष्ण।

अध्याय--चार

पावन धाम में

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी गिरिराज गोवर्धन से सदा विनती करते : निज निकट निवास देहि गोवर्धन त्वम । रूप गोस्वामी प्रभु भी कहते :

वैकुण्ठाज्जनिता वरा मधुपुरी तत्रापि रासोत्सवाद्,
वृन्दारण्यमुदारपाणि रमणात्तत्रापि गोवर्धनः ।
राधाकुण्डमिहापि गोकुलपतेः प्रेमामृताप्लावनात्,
कुर्यादस्य विराजतो गिरितटे सेवां विवेकी न कः ?

सर्व प्रथम हम वैकुण्ठ धाम को एक अत्यन्त उच्च स्थान के रूप में देख सकते हैं किन्तु उससे भी ऊपर अधिक महत्वपूर्ण स्थान मथुरा है—जनितो वरा मधुपुरी । क्यों ? क्योंकि कृष्ण स्वयं वहां जन्मे । यही वहां उनकी लीला थी । यद्यपि नारायण का जन्म नहीं होता—न उनका जन्म होता है न ही उनके माता पिता हैं—किन्तु कृष्ण के माता भी हैं पिता भी । यह उनकी लीला के अर्न्तगत है । तथा वैकुण्ठाज जनितो वरा मधु-पुरी तत्रापि रासोत्सवाद—मथुरा से श्रेष्ठ वृन्दाबन है जहां कृष्ण ने गोपियों के साथ रास किया । उससे भी ऊपर स्थान है श्रीगोवर्धन का—श्रील प्रभुपाद भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं, गिरिधारी-गान्धरव्विका-यथा क्रीड़ा कैला ।

गोवर्धन की तलहटी में सबसे पूज्य स्थान राधाकुण्ड है, वहां कृष्ण और राधारानी ने अपनी सर्वोच्च प्रेम-लीला की । जिसमें थोड़ी बुद्धि है उसे गोवर्धन-वास अवश्य करना चाहिये, और यदि संभव हो तो वह राधाकुण्ड में रहे । यद्यपि हर कोई राधाकुण्ड में नहीं रह सकता तथापि उन्हें गोवर्धन के श्रीचरणों में रहना चाहिये ।

श्रील प्रभुपाद सरस्वती ठाकुर ने कहा कि हम गोवर्धन के श्रीचरणों में रह सकते हैं और प्रतिदिन राधाकुण्ड जाकर राधाकुण्ड,

श्यामकुण्ड आदि की सेवा कर सकते हैं। भक्त गोवर्धन में रहकर गोपी-भाव से सेवा कर सकते हैं।

गोपियां भी गोवर्धन में बास करती हैं। सखियां एवं मंजरियां गोवर्धन में रहकर राधाकृष्ण की सेवा हेतु राधाकुण्ड जाती हैं। रात में वे सब राधाकुण्ड में नहीं ठहरती। उनमें से केवल कुछ वहां रुकती हैं तथा अन्य गोवर्धन लौट आती हैं तथा तीन बजे प्रातः तक रात वहीं बिताती हैं। फिर प्रातः चार बजे वे अपनी सेवा पुनः राधाकुण्ड में आरंभ कर देती हैं और पूरा दिन वहां व्यतीत करती हैं। जब राधा एवं कृष्ण सोने जाते हैं तो वे पुनः गोवर्धन लौट आती हैं। उस समय रूप मंजरी खरीखी केवल कुछ वहां राधाकृष्ण की सेवा हेतु, उनके पाद-सेवन एवं सुख हेतु रुकती हैं।

रात में राधाकृष्ण अपनी लीला में निरत हो जाते हैं तथा मंजरियां उसमें सहायता करती हैं। किन्तु सखियां उस स्थल में प्रवेश नहीं कर सकतीं। उस समय वहां केवल मंजरियां जा सकती हैं। कभी-कभी कृष्ण को प्यास लग जाती है और वे एक गिलास पानी चाहते हैं किन्तु उस समय कोई भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। केवल मंजरियां अन्दर जा सकती हैं। वह एक बड़ी ऊँची वस्तु है और हमारे लिये विवेचन योग्य विषय नहीं है। किन्तु ऐसा हो रहा है।

हम स्वयं गोवर्धन के श्रीचरणों में निवास करेंगे तथा कृष्ण एवं राधारानी से प्रार्थना करेंगे। गोवर्धन में सारा समूह राधारानी की सेवा कर रहा है—वस्तुतः उनका कृष्ण से कोई संबंध नहीं है। वे गोवर्धन से राधाकुण्ड एवं श्यामकुण्ड जाते हैं तथा भांति भांति के आयोजन करते हैं। अष्ट-याम लीला केवल वहीं होती है अन्यत्र नहीं और जो अनन्य भाव से राधा-कृष्ण की सेवा करना चाहता है वह इन लीलाओं के सम्बन्ध में सोचेगा। किन्तु इस समय हम इन बातों को नहीं सोचेंगे—अपने भौतिक शरीर और मन से हम उसके विषय में नहीं सोच सकते।

अधमेर स्वरूप स्फुरिबे नयने
हइबे राधार दासी

श्रील भक्ति विनोद ठाकुरने कहा कि कीर्तन, कीर्तन कीर्तन, करते करते हम अपना देह-बोध भूल जायेंगे और उस समय श्रीराधारानी के दास होने का हमारा मुख्य स्वरूप प्रकट होगा। वह एक बड़ी ऊंची वस्तु है, किन्तु तत्काल हम ऐसी बातों को नहीं विचारेंगे क्योंकि यह निश्चित है राधा-कृष्ण एवं भक्तों के प्रति हमसे अपराध होगा। हम 'वृन्दावन' कहते हैं, किन्तु वृन्दावन का अर्थ है उससे सम्बद्ध सारे स्थान एक साथ—वह वृन्दावन है।

जय राधे जय कृष्ण जय वृन्दावन....
श्यामकुण्ड, राधाकुण्ड, गिरि गोवर्धन
कालिन्दी जमुना जय, जय महावन....

ये सारे स्थान एवं इससे भी अधिक वृन्दावन में अन्तरभूत हैं। इस वृन्दावन गांव में कृष्ण भांति भांति की लीलाओं में निमग्न हैं। इस स्थान में कृष्ण की लीलायें विभिन्न क्षेत्रों में हो रही हैं। हम भी यहां वृन्दावन में हैं और प्रार्थना करते हैं कि कहीं अपना 'श्रील श्रीधर स्वामी सेवाश्रम' बने। मुझे पता नहीं कि राधारानी वह स्थान हमें कहां देंगी, किन्तु उसे केवल प्रार्थना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। हम केवल यह विनती कर सकते हैं "कृपया हमें कोई प्रवेश द्वार दें।"

वास्तव में राधारानी प्रवेश नहीं देतीं। प्रवेश की स्वीकृति सखियां—राधारानी की सहचरियां देती हैं। विशेषकर हम ललिता देवी के समूह में हैं और उस समूह में, रूप मजरी, वर्ग की प्रधान हैं तथा ललितादेवी हमारी मालकिन हैं। हमारी विनती है कि वे हमें स्वीकार करेंगी तथा सेवा में लगायेंगी। हमें आशा है क्योंकि ललिता देवी बड़ी खुली स्वभाव की हैं। वे प्रायः नित्यानन्द प्रभु की भांति उन्मुक्त एवं उदार हैं। वे सबके प्रति बड़ी प्रेमाद्र हैं तथा सभी सखियों की प्रधान हैं।

अष्ट सखियां हैं : ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुंगविद्या, इन्दुरेखा, सुदेवी, तथा रंगदेवी। ललिता उस परिकर की प्रमुख हैं। उनका एक विशिष्ट वर्ग है और उसी के माध्यम से वे राधारानी की सेवा का प्रबन्ध करती हैं। हमारे आध्यात्मिक स्वरूप

की वे अग्र सखी हैं। इस समय हम भौतिक शरीर में हैं इसलिये हम उसके विषय में नहीं सोचेंगे। फिर भी वह हमारे जीवन का लक्ष्य है। अतः हमें उसकी पूजा पूर्ण श्रद्धा से करनी है तथा हमें धाम में कोई अपराध नहीं करना है।

वृन्दावन-धाम में बास बड़ा कठिन है। हमारे मन में राधा-कृष्णकी सेवा की अनन्य निष्ठा होनी चाहिये और वही हमें वृन्दावन में कुछ ठौर दे सकता है। किन्तु अपने श्रील गुरु महाराज तथा रूप गोस्वामी के माध्यम से प्राप्त ललितादेवी की कृपा उसे संभव बना सकती है। और उस रूप में यदि हम हर वस्तु को देखना चाहें, तो हमारे सामने कोई समस्या नहीं आयेगी।

हमारा बड़ा सौभाग्य है कि श्रील गुरु महाराज की कृपा से हम यहां वृन्दावन-धाम पहुँचे हैं। वस्तुत :वृन्दावन अतीन्द्रिय लोकमें हैं और हम अपने स्थूल भौतिक शरीरसे अतीन्द्रिय धरातल पर नहीं पहुँच सकते। किन्तु महाप्रभु तथा श्रीराधारानी की कृपा से हमें यहां विशेष सुविधायें हैं। हम मधुमक्खियों की भांति हैं जो मधु के मुहरबन्द डिब्बे से मधु लेने का प्रयास कर रही हैं, किन्तु वे हमें अतीन्द्रिय लोक से जुड़ने का कोई सुअवसर दे सकती हैं। मधु-पात्र ठोस है तथा मधु मक्खियां मुहर हटाकर शहद नहीं ले सकतीं। यह केवल एक उदाहरण है, किन्तु तब भी, उससे हम समझ सकते हैं कि हमारी स्थिति क्या है। मधुमक्खियां बोतल के बाहर हैं और हमारी स्थिति भी वैसी ही है—परन्तु हम भी मधु के समीप हैं।

हम राधारानी की कृपा से वृन्दावन-धाम में प्रवेश पा सकते हैं। किन्तु वे श्रीकृष्ण की सेवा में निरत हैं और उनके पास हमारी ओर देखने का समय नहीं है। किन्तु उनकी सुन्दरतम, परम प्रिय तथा सर्वोच्च सहचरी ललिता देवी की कृपा से हम प्रवेश का अवसर पा सकते हैं। ललिता देवी सखी-वृन्द की नेत्री हैं। वे राधारानी के परिकर की प्रधान हैं। वे बड़ी कृपालु हैं और उनकी कृपा से हमें व्रज धाम, वृन्दावन धाम में प्रवेश मिल सकता है।

किन्तु यहाँ एक प्रश्न है। उसे हम चाहते भी हैं या नहीं? हम वृन्दावन-धाम के बारे में सुनते हैं किन्तु उसे हम अपनी भौतिक

इन्द्रियों तथा भौतुक भावनाओं से सुनते हैं। उसके माध्यम से भी कुछ सार हमें प्राप्त हो रहा है और हम कहते हैं, "हम वृन्दाबन धाम को पसन्द करते हैं।" किन्तु श्रीहरिनाम महामन्त्र की भांति वृन्दावन-धाम भी अतीन्द्रिय है। यदि हम उसमें प्रवेश चाहते हैं, तो हमें उनके सखी-परिकर के माध्यम से श्रीराधारानी की कृपा की आवश्यकता है तथा उसे हमअपने तीव्र सात्विक आकांक्षा से ही प्राप्त कर सकते हैं।

श्रील रूप गोस्वामी का कथन है :

कृष्ण-भक्ति-रस-भाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते
तत्र लौल्यम् अपि मूल्यम् एकलं
जन्म कोटि-सुकृतिर्न लभ्यते

(श्रीचैतन्य चरितामृत, मध्यलीला ८.७०)

हम भगवान की अनेक प्रकार से उत्कृष्ट सेवायें कर सकते हैं किन्तु वह वृन्दावन-धाम की सेवा की सच्ची आकांक्षा का कारण नहीं है। हमें व्रज धाम के सखा-सहचरों के सानिध्य, कृष्ण लीला के श्रवण तथा श्रवणं, कीर्तन विष्णोः, स्मरणं पादसेवनं आदि की आवश्यकता है। अपने भक्तिमार्ग में उस प्रकार की सेवा द्वारा हमें प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। तथा श्रीराधारानी की अहैतुकी कृपा से उस प्रकार की भक्ति-भावाकांक्षा हमारे हृदय में जाग्रत हो सकती है—कृष्ण-भक्ति-रस-भाविता मतिः। इस लौकिक जगत में वह बड़ी दुर्लभ वस्तु है, परन्तु वह हमारे जीवन का परात्पर ध्येय है। हमें उसकी आवश्यकता है। अपने भौतिक शरीर से हम उस दिव्य लीला का स्पर्श नहीं कर सकते, किन्तु अपनी गुरु-परम्परा से हम उसे थोड़ा बहुत समझ सकते हैं।

ईश्वरःपरमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः
अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारण कारणम्

(श्रीब्रह्म संहिता ५.१)

"गोविन्द कृष्ण परमेश्वर, सच्चिदानन्द के मूर्तिमान रूप हैं। वे अनादि, सकल सत्ता के मूल तथा सर्व कारणों के कारण हैं।"

उनकी यह स्थिति है।

नाम चिन्तामणिः कृष्णः चैतन्य-रस-विग्रह
पूर्ण शुद्धो नित्य मुक्तोऽभिन्नत्वान नाम नाभिनो

पावन नाम एवं कृष्ण अभिन्न हैं। दोनों अतीन्द्रिय हैं, इसलिये अपने सांसारिक ज्ञान एवं सांसारिक क्रिया द्वारा हम उस दिव्यता का स्पर्श नहीं कर सकते। उपनिषद में उल्लेख है :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य
न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य
तस्यैषात्मा वृणुते तनूं स्वाम्

"आत्मा की प्राप्ति प्रवचन से नहीं होती, न ही अधिक बुद्धि से अथवा वेदों के व्यापक ज्ञान से ही होती है। वह केवल उसे प्राप्त होती है जिसे वह स्वयं वरण कर ले। ऐसे व्यक्ति को अपना रूप स्वयं प्रकाशित कर देती है।"

जब दिव्य लोक से अहैतुकी कृपा आती है और पतित आत्मा का स्पर्श करती है तो वह अनुभव करती है कि "कुछ मुझे स्पर्श कर रहा है और वह बड़ा उदात्त एवं महिमामय है।" एक उदाहरण है कि यदि एक चींटी मेरे पीछे दौड़ रही है और मैं उसे छू लेता हूँ तो चींटी समझ सकती है कि उसका स्पर्श किया जा रहा है। सब कुछ मेरे नियन्त्रण में है, उसके नहीं। जब मैं अपनी अंगुली उठाता हूँ तो वह सोचती है, "ओह, जो कुछ आकर मुझे छू गया वह अब जा चुका है।" इस स्थिति में अपने व्यक्तित्व का प्रभाव क्रियान्वित करने को उसके लिये कोई संभावना नहीं है, स्थिति पर नियन्त्रण हेतु उसके पास इच्छा-स्वातन्त्रय नहीं है।

कृष्ण उस प्रकार हैं। वह अतीन्द्रिय ज्ञान स्वयं उतर कर जब हमें स्पर्श करता है तब उस समय हम उसे समझ सकते हैं। अन्यथा उसे समझ सकने की हमारे समक्ष कोई संभावना नहीं है। वह यान्त्रिक नहीं है। एक संभावना है—यम एवैष वृणुते तेन लभ्यः—यदि हम अनन्य निष्ठा पूर्वक कृष्ण के चरणारविन्दों का आश्रय लेलें,

तो कृष्ण हमारे ऊपर कृपालु अवश्य होंगे। उससे हमें कुछ आशा बंधती है। यह सब कृष्ण की इच्छा पर निर्भर है, किन्तु इस प्रकार हम अपनी स्थिति बना सकते हैं तथा अतीन्द्रिय लोक में प्रवेश कर सकते हैं।

हम पूजा-अर्चा जैसी अन्य प्रकार की क्रियाओं में क्यों लगे हैं? यह सब हमारी सब कुछ अर्पण करने, अपने आप सहित को, कृष्ण के पादाविन्दों में निछावर कर देने की साधना है। इस रूप में हम साधना का प्रयास कर रहे हैं।

किन्तु कृष्ण ने भगवद्गीता में कहा—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः (१८.६६)

"सभी धर्मों का परित्याग कर केवल मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूंगा। चिन्ता मत करो।"

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम

"हे कुन्तीपुत्र अर्जुन, तुम जो भी कर्म करो, साधारण या शास्त्र विहित, जो कुछ खाओ, जो कुछ यज्ञ में अर्पण करो, जो कुछ दान करो, तथा जो कुछ तप-व्रत आदि तुम करो, वह सब मेरे प्रति अर्पित करके करो।"

इस प्रकार के कई श्लोक हैं। एक अन्य श्लोक है :

दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया
माम् एव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते

"प्रकृति के त्रिगुणों से बनी यह मेरी दिव्य माया पार करने में दुष्कर है। किन्तु जो केवल मुझ में शरणागत हो जाते हैं वे निश्चितरूप से इस विकट माया को पार कर लेते हैं।

कृष्ण अपने चरणारविन्दों में हमारी पूर्ण शरणागति चाहते हैं और यदि हम ऐसा कर लें तो वे हमारा पूरा दायित्व ले लेंगे। तथा

जब वे हमारा संपूर्ण भार स्वयं ले लेंगे तो हमारा शरीर चिन्मय हो जायगा।

दीक्षा-काले भक्त करे आत्म समर्पण
सेइ काले कृष्ण-तारे करे आत्म-सम
सेइ देह करे तार चिदानन्द-मय
अप्राकृत-देहे तांर चरण भजय

(श्रीचैतन्य चरितामृत, अन्त्यलीला ४. १९२-१९३

जब बद्ध आत्मा कृष्ण के चरणारविन्दों का आश्रय लेती है, कृष्ण उसे अपना लेते हैं और जो कुछ उसे चाहिये प्रदान कर देते हैं, उसके शरीर को चिन्मय बना देते हैं। मुख्य वस्तु है भक्ति। एक पूर्णरूपेण समर्पित आत्मा की अपने लिये कोई चिन्ता शेष नहीं रहती।

मानसा, देहो, गेहो, यो किछू मोर
अर्पिलूं तुवा पदे, नन्द किशोर
सम्पदे विपदे जीवने-मरणे
दाय मय गेला, तुवा-ओ-पद वरणे (शरणागति)

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर कहते हैं, "जो कुछ मेरे पास है, वह सब मैं कृष्ण के चरण कमलों में अर्पित करता हूँ। मैं नहीं जानता कि मेरे पास क्या है पर वह जो कुछ भी हो, कृपया उसे अपनी सेवा में लेलें। आजके पश्चात् अपने लिये मेरा कोई दायित्व नहीं है। आप इस शरीर को बनाये रखें अथवा नहीं, यह आपकी इच्छा है, मेरी चिन्ता का विषय नहीं मैं केवल आपके चरणारविन्दों की सेवा करूंगा।"

जब बद्ध आत्मा कृष्ण के पादारविन्दों की शरण लेती है तो कृष्ण उस बद्ध आत्माको अपनी निजी सम्पत्ति के रूप में ग्रहण करते हैं।

रक्षा करती तुहुं निश्चय जानि
पान करबुन् हाम यमुना-पानि

शरणागति में भक्ति विनोद ठाकुर ने कहा—"आप मेरी रक्षा करें। मैं जानता हूँ यह आपका कर्त्तव्य है, इसलिये मुझे क्या भय

हो सकता है ? मैं कालियनाग के विषाक्त जल में निर्भय होकर कूद सकता हूँ—में कुछ भी कर सकता हूँ।"

यहां हम मुख्य वस्तु देख सकते हैं : कृष्ण में श्रद्धा। निष्ठा का जगत, अर्थात् वास्तविक अतीन्द्रिय जगत ! उस जगत में श्रद्धा प्रधान वस्तु है—मूल आधार है। जब हम उसमें अपनी पूर्ण श्रद्धा से निवास करते हैं तो जीवन में परम लाभ का सर्वोच्च फल प्राप्त करेंगे।

आपने एक उदाहरण सुना होगा। जब एक पुलिस अधिकारी किन्हीं चोरों का पीछा करता है किन्तु गलती से किसी को मार देता है, तो उसके कार्यों की पूरी जिम्मेदारी, यहां तक उसकी त्रुटियों की भी, सरकार की होती है, पुलिस अधिकारी की नहीं। उसका एकमात्र दायित्व चोरों को पकड़ना है—वही उसका कर्त्तव्य है। यह मुख्य विन्दु है।

आत्म समर्पण के उपरान्त जो कुछ हम करते हैं उसका उत्तर दायित्व कृष्ण का हो जाता है, हमारा नहीं, किन्तु वह समर्पण पूर्ण होना चाहिये। बद्ध जीव का यह प्रथम गुण है। तत्पश्चात् सब कुछ कृष्ण पर निर्भर हो जाता है तथा केवल वही जानते हैं कि बद्ध आत्मा का भार वे किस रूप में ग्रहण करेंगे।

कृष्ण की लीलाओं एवं उनके भक्तों के माध्यम से आप समझ सकते हैं कि कृष्ण की इच्छा क्या है, क्या नहीं है। यदि आप उस ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं तथा उस वातावरण में अपनी भक्ति को दृढ़ रखते हैं, तो आपको कहीं से कोई भय नहीं रहेगा।

यह परामर्श हमारी प्राथमिक तथा गौड़ शिक्षा के वर्ग में आता है। किन्तु सर्वोच्च स्थिति श्रीराधारानी की सहचरियों की कृपा से आती है। यदि हमारी आकांक्षा दृढ़ एवं उच्च है तो वह अनुग्रह हमें प्राप्त होगा। जिसमें मधुररस के लिये उत्कट उत्कण्ठा की विशेष योग्यता है, वह उसे प्राप्त करेगा। यह सत्य है। उस लीला के प्रति एकनिष्ठ उत्कण्ठामात्र हमें एक सुअवसर प्रदान कर सकती है।

श्रील दास गोस्वामी की लीलीलों में हम कह सकते हैं :

आशाभरैर-अमृत-सिन्धु-मयैः कथंचित्
कालो मयातिगमितः किल सम्प्राप्तं हि

त्वं चेत कृयं मयि विद्यास्यसि नैव किं मे
प्राणेर व्रजे मच्च बरोरु बकारिनापि

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी ने इस प्रकार की उत्कण्ठा के साथ अपने जीवन के अस्सी वर्ष वृन्दावन-धाम में बिताये। उन्होंने अपनी स्थिति और अपनी लीला के माध्यम से दिखलाया कि उत्कण्ठा की यह मनोदशा जीव को कैसे प्राप्त होती है—तथा वह एक शानदार ढंग से कैसे प्राप्त हो सकती है।

श्रीमन् महाप्रभु ने महाभाव सहित सभी प्रकार के भावों का इस लौकिक जगत में प्रदर्शन किया। उन्होंने उसका आस्वाद किया कृष्ण ने स्वयं उसका आस्वादन किया तथा उसको उत्कृष्ट आत्माएं, एवं उनके सखा परिवार भी देख सकते हैं। उत्कृष्ट आत्माओं को हर वस्तु संकेत करती है कि वह किस रूप में अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर होगा।

दास गोस्वामी ने कहा, "मैं केवल आपके अनुग्रह की प्रतीक्षा कर रहा हूं। हे राधारानी, यदि आप उसे नहीं देतीं तो मैं सोचता हूं वृन्दावन धाम में मेरा जीवन व्यर्थ हो गया। मैं कृष्ण की कृपा तक को भी नहीं चाहता। मैं कृष्ण के साथ भी क्या करूँगा यदि वहाँ आप का अनुग्रह नहीं विद्यमान है? आप कृष्ण की सुपरम दासी हैं और केवल आप के मार्ग दर्शन में मैं वह सेवा चाहता हूँ। आपके सम्बन्ध के बिना मैं उसे नहीं पा सकता, यह मुझे मालूम है, और यह सौ प्रतिशत सत्य है।

कृष्ण के अनेक रूप हैं, किन्तु "राधा-संगे यदा भाति, तदा मदन मोहितः।" जब आप कृष्णके साथ होती हैं तो हम देख सकते हैं कि कृष्ण अपने पूर्ण आह्लादकरी रूपमें होते हैं। अतः मुझे आपका अनुग्रह चाहिये मैंने अपना पूरा समय आपकी कृपा हेतु बिताया है। मेरी एक मात्र प्रार्थना है, "कृपया मेरे शीश पर अपना अनुग्रह करें।' मैं आपके चरण कमल की सेवा करना चाहता हूँ। आपके विना मैं कृष्ण का सानिध्य भो नहीं चाहता, कृष्ण की ऐसो सेवा का कोई मूल्य नहीं है। आपकी सेवा के बिना कृष्ण प्रसन्न नहीं हो सकते तथा मैं आप की सेवा करना चाहता हूँ।"

शास्त्र में कृष्ण कहते हैं :

मद् भक्तान्नं च ये भक्तास्ते भू भक्ततमःमताः

"मेरे प्रिय पार्थ, जो मेरा भक्त होने का दावा करता है वह वास्तव में वैसा नहीं है। केवल वह जो मेरे भक्त का भक्त है वही मेरा सच्चा भक्त है।"

इस विन्दु की अभिव्यक्ति करते हुये हम श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवदगीता तथा अन्य स्थानों पर अनेक श्लोक देख सकते हैं।

इसलिये श्रील दास गोस्वामी कहते हैं —'अपने भक्तों के परिकर में कृष्ण स्वयं अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं अतः मुझे आपका अनुग्रह चाहिये। केवल यही मेरी आशा है। एक दिन मैं उसे अवश्य प्राप्त करूंगा। किन्तु यहां राधा-कुण्ड में मैंने अपना पूरा जीवन बिता दिया, और फिर भी वह मुझे नहीं मिला।" इस प्रकार श्रील दास गोस्वामी प्रार्थना कर रहे हैं। उनकी महत्वाकाँक्षा केवल राधा-रानी की सेवा करने की है। और यह केवल श्रीराधारानी के सहचरी मण्डल की कृपा-विशेष द्वारा संभव है कि हम उस प्रकार की आकांक्षा प्राप्त कर सकें।

एक गीत में श्रील नरोत्तम ठाकुर ने लिखा : नितायेर करुणा हबे, व्रजे राधा-कृष्ण पावे। नित्यानन्द प्रभु हमें वहाँ प्रवेश दे सकते हैं वे पारपत्र दे सकते हैं। किन्तु केवल राधारानी की सहचरी-वृन्द ही हमें उस संसार में प्रवेश हेतु 'वीसा' दे सकती हैं। इसलिये हम अपने गुरु महाराज से प्रार्थना करते हैं। वह राधारानी के अभिन्न प्रतिरूप हैं।

आचार्यं माम् विजानीयान्, नावमन्येत कर्हिचित्
न मर्त्य बुध्यास्यूयेत, सर्वदेव-मयो गुरुः
(श्रीमद्भागवत ११·१७.२७)

गुरु के रूप में श्रीकृष्ण स्वयं प्रकट होते हैं, किन्तु जब हम गुरु का सच्चा रूप देखेंगे तो समझेंगे कि वह श्रीकृष्ण का सर्वोच्च दास है।

अपने गुरु अष्टक में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं–

यस्यप्रसादात्भगवत्प्रसादो यस्यप्रसादान्नगतिः कुतोऽपि
ध्यायन् स्तुवंस्तस्य यशस् त्रिसंध्यं वन्देगुरोः श्रीचरणार्विन्दम्
तथा
निकुंज-यूनो रति-केलि सिध्द्यै या यतिभिर युक्तिर अपेक्षणीया
तत्रादि-दाक्ष्याद् अति-वल्लभस्य वन्दे गुरोः श्रीचरणार्विन्दम्

इन श्लोकों द्वारा हम श्रीगुरुदेव की स्थिति देख सकते हैं। श्रील प्रभुपाद सरस्वती ठाकुर ने कहा कि यदि हमें उच्च कोटि का साक्षात्कार हो जाय तो हम गुरुदेव को श्रीराधारानी के रूप में देख सकते हैं। अर्थात् श्रीकृष्ण की सर्वोच्च दासी के रूप में। उस दृष्टि को प्राप्त करने के लिये हमें अपने श्रील गुरु महाराज की कृपा की आवश्यकता है। ऐसी कृपा के बिना हम सत्य के मनोरम उपवन अतीन्द्रिय लोक में पदार्पण नहीं कर सकते।

श्रील गुरु महाराज की कृपा से हम यहां एकत्रित हैं तथा गुरुदेव के चरणार्विन्दों की कृपा की याचना कर रहे हैं। यदि श्रील गुरु महाराज अपनी कृपा के पूर्ण वेग के साथ हमारे हृदयों में आ धमकते हैं तो उस दिव्य लोक में हमारा प्रवेश अवश्य हो जायगा।

श्रील गुरु महाराज ने कृष्ण-लीला की व्याख्या एवं प्रशंसा अनेक बार की और प्रत्येक बार वे कोई न कोई संकेत देते : हमें ललिता देवी के सेवा भाव का अनुगमन करना चाहिये।

ललिता देवी का भाव प्रतिदिन चौबीस घण्टे अविराम सेवा का है, और ऐसा भाव उनके पूरे दल में व्याप्त रहता है। केवल वही नहीं अपितु सारे सहचरी-वृन्द ललिता देवी की सेवा से दीप्त रहते हैं। इसलिये उनका अनुग्रह प्राप्त करना आवश्यक है और वह केवल अपने श्रील गुरु महाराज की कृपा मात्र, न कि किसी अन्य उपाय से संभव है। ऐसा इसलिये कि वे रूपानुग सम्प्रदाय के सेवाधिकारी के पद पर प्रतिष्ठित हैं। वे ललिता देवी की सर्व प्रधान दासी हैं और वह दासी श्री रूप मंजरी हैं।

श्रीमन् महाप्रभु ने अपने सम्प्रदाय का प्रभार श्रील रूप गोस्वामी को दिया। इस रूप में हम जुड़े हैं, और एक दिन हम उनकी सेवा की अपनी दिव्य अभीप्सा को अवश्य पूरी करेंगे। यह हमारी एकमात्र आशा है। ❀

अध्याय—५

आध्यात्मिक रत्नों की धरती

श्रीवृन्दारन धाम के भीतर से और संसार के सभी कोनों से अनेकानेक भक्त हमारे मठमेंआ रहे हैं और हम साथ-साथ रह रहे हैं। हर आगन्तुक बंगाली, अंग्रेजी अथवा हिन्दी नहीं जानता किन्तु वह सदैव बड़ा विनम्र तथा सेवा-भाव वाला होता है एवं वे सेवा कर भी रहे हैं। यह किस प्रकार संभव है? यह केवल श्रील गुरु महाराज की अहैतुकी कृपा से संभव है।

श्रील गुरु महाराज ने अपनी विचारधारा का प्रचार किया जो कि श्रील रूप गोस्वामी को परम्परा से चली आ रही है तथा आप उस सेवा परम्परा में सहभागी होने का अवसर पा रहे हैं। आप में से हर कोई अंग्रेजी भी नहीं बोल सकता, पर फिर भी आप सेवा कर रहे हैं। कभी कभी यह देखना मेरे लिये चमत्कार है। हमें केवल प्यार तथा सेवा का भाव ही लाभ पहुँचा सकता है, और वह आपके पास है। वह आपका धन है, और आपकी सेवा करना—वह मेरा धन है। इस प्रकार हमारे बीच कोई समस्या नहीं आती।

हम श्रील गुरु महाराज के संकल्प एवं भाव की सेवा करने का सदा प्रयास कर रहे हैं, यही कारण है कि हम यहाँ आये हैं। अन्त में श्रील गुरु महाराज ने मुझसे कहा, "भविष्य में बहुत सारे मठ बनाने का प्रयास मत करना। एक मठ की व्यवस्था भी बहुत कठिन है और तुम्हारा सारा समय उसके प्रबन्ध में लग जायगा। अतः पुरी-धाम में केवल एक मठ बनाओ, तथा यदि संभव हो तो वृन्दावन-धाम में भक्तों का एक भजनाश्रम निर्मित करने की व्यवस्था करो।" यह उनकी इच्छा थी। और अब वह स्थापित हो गया है—पुरी, वृन्दावन तथा नवद्वीप धाम में। सारे भक्तों के साथ मैं श्रील

गुरु महाराज की इच्छा एवं संकल्प को पूरा करने का प्रयास कर रहा हूँ।

श्रील गुरु महाराज को मैं जानता हूँ तथा उनमें मेरी आस्था है। उनकी अहैतुकी कृपा से हम यहाँ भक्तों के लिये एक भजनाश्रम बना सकते हैं और उसकी स्थापना अवश्य करनी चाहिये। श्रील गुरु महाराजने 'मठ'के लिये नहीं, अपितु 'भजनाश्रम' के लिये कहा।

जो भी वृन्दावन आता है उसे सेवा अवश्य करनी चाहिये। भजन का अर्थ है सेवा यहाँ हम व्यवसाय-व्यापार नहीं कर रहे हैं। जब वृन्दावन, गुरु एवं वैष्णवों के प्रति सेवा का भाव आये और जब हमारे भीतर राधा-कृष्ण की सेवा का भाव जाग्रत हो, तब हमें वृन्दावन में वास करने का प्रयास करना चाहिये। जिसका ऐसा भाव हो वह वृन्दावन में रह सकता है और उस प्रकार के भक्त के लिये हमें यहाँ एक भजनाश्रम अवश्य बनना चाहिये।

कभी कभी कुछ भक्त वृन्दावन में रहने की इच्छा रखते हैं किन्तु उनका वृन्दावन वास वैसे ही जैसे एक मधुमक्खी मधु के बोतल के बाहर रहती हो। अभी हाल में एक भक्त मुझ से मिलने आया, और अब वह वृन्दावन में रह रहा है। किन्तु वह क्या कर रहा है ? उसने एक गऊ खरीदी और अपने परिवार का पालन कर रहा है—वह वही कर रहा है जैसा वह बंगाल में था। उसका भाव उत्तम है क्योंकि वह वृन्दावन को अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान मानता है किन्तु वृन्दावन की उसकी अवधारणा बहुत क्षुद्र है।

वृन्दावन अनन्त रूप से महान है और हमारी बुद्धि के लिये वह अचिन्त्य है। हम केवल भौतिक आवरण देखते हैं तथा श्रीवृन्दावन धाम के चिन्मय क्षेत्र में हमारा प्रवेश नहीं हो पा रहा है। हमें प्रवेश की आवश्यकता है और हमारी यह आशा है कि हमें वह वास्तविक दृष्टि एक दिन मिलेगी ही

मातल हरिजन कीर्तन-रंगे
पूजल राग-पथ गौरव-भंगे

इस श्लोक को उदाहरण स्रूवप ग्रहणकर हम दूर से वृन्दावन

की पूजा करेंगे। जो श्रीब्रह्म संहिता पढ़ता है वह वृन्दावन-धाम के विषय में कुछ जान सकता है। वस्तुतः वृन्दावन धाम है :

गोलोक नाम्नि निज- धाम्नि तले च तस्य
देवी महेश हरि-धामसु तेषु तेषु

"सर्व प्रथम देवी-धाम है, फिर महेश-धाम तथा महेश-धाम से ऊपर हवि-धाम और सबसे ऊपर उनका अपना धाम, गोलोक है।"

तथा—

श्रियः कान्ताः कान्तः परम-पुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणि गणमयी तोयम अमृतम्
कथा गानं नाट्यं गमनम् अपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योतिः परम अपि तद् आस्वाद्यम अपि च
स यत्र क्षीराब्धिः स्रवति सुरभीभ्यश्च सुमहान्
निमेषार्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः
भजे श्वेतद्वीपं तमहं इह गोलोकम् इति यं
विदन्तस्ते सन्तः क्षिति-विरल-चाराः कतिपये

(श्रीब्रह्म संहिता ५.५६)

(वह स्थान जहां सौभाग्य की दिव्य देवियां प्रेयसी हैं तथा परम पुरुष कृष्ण एकमात्र प्रेमी हैं, सारे वृक्ष दिव्य कल्पतरु हैं, मिट्टी चिन्मय रत्नों की बनी है तथा पानी अमृत है, जहां हर शब्द एक गीत एवं हर गति नृत्य है, वंशी परम प्रिय संगिनी है, सूर्य की ज्योति एवं चन्द्रिका दिव्य आनन्दोन्माद एवं जो कुछ है सब दिव्य एवं सुखमय है, जहां करोड़ों सुरभि गउओं के स्तनों से दूध का महोदधि अजस्र रूप से प्रवाहित होता रहता है तथा दिव्य काल जहां एक पल के भूत एवं भविष्य के विक्षेप के बिना शाश्वत रूप से उपस्थित रहता है..... श्वेतद्वीप के उस परम चिन्मय धाम की मैं वन्दना करता हूँ। कुछ थोडे से विशुद्ध भक्तों के सिवा उस स्थान को इस संसार में वस्तुतः कोई नहीं जानता– और वे उसे गोलोक के रूप में जानते हैं।")

यह व्याख्या है वृन्दावन की, वास्तविक वृन्दावन की। ब्रह्म संहिता में ही भगवान ब्रह्मा कहते हैं (५.२९)

चिन्तामणि प्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष लक्षा—
वृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्
लक्ष्मी-सहस्त्र-शत-संभ्रम-सेव्यमानं
गोविन्द आदि पुरुषं तमहं भजामि

"जो असंख्य मन-वांछित फलदायक मणि-माणिक्यों के धाम में लाखों कल्पतरुओं से घिरा है, जो चिरपर्यस्विनी कामधेनुओं को चराता है तथा लक्ष-लक्ष लक्ष्मियों से सदा सेवित है, उस आदि पुरुष गोविन्द की मैं पूजा करता हूँ।"

वृन्दाबन-धाम, गोलोक-धाम के सम्बन्ध में श्रीब्रह्म संहिता में बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। चिन्तामणि-प्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष। यदि हम वृन्दावन के घरों की ओर देखें तो वर्तमान में हम यह नहीं पायेंगे कि वे चिन्तामणि के बने हैं, किन्तु वस्तुतः वे चिन्मय हैं तथा वास्तविक वृन्दावन चिन्तामणि का बना है। प्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष सद्मसु का अर्थ है सारे घर। एवं कल्पवृक्ष का अभिप्राय है कामना-पूर्ण करने वाले वृक्ष। यदि तुम एक नीम के पेड़ से आम जैसा फल चाहते हो, तो नीम का पेड़ तुम्हें आम का फल देगा, वही कल्पतरु है। किन्तु अपनी वर्तमान दृष्टि से जो कुछ हम देखते हैं वह वह नहीं है।

हम सोचते हैं कि यह एक अति उत्तम स्थान है, इसमें सन्देह नहीं, तथा उसका अस्तित्व इस भौतिक जगत से ऊपर है, किन्तु अपने लौकिक ज्ञान से हम उसका अनुभव नहीं कर सकते। उस श्रेष्ठ स्थान को हम महिमा मंडित करते हैं इसलिये कभी कभी कुछ प्रकाश हमें प्राप्त हो सकता है। निस्सन्देह हम उसे अन्य स्थानों से श्रेष्ठतर समझते हैं परन्तु हम वास्तविक वृन्दावन नहीं देख पाते। किन्तु हमें सच्चे वृन्दावन की आवश्यकता है और हमें उसमें प्रवेश प्राप्त करना है।

चिन्तामणि-प्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्

लक्ष्मी सहस्र-शत-संभ्रम सेव्यमानं
गोविन्दम् आदि पुरुषं तमहं भजामि

(श्रीब्रह्म संहिता, ५.२९)

इस सम्बन्ध में मैं श्रील स्वामी महाराज की बहन पिशिमा द्वारा दिया एक उत्तर याद कर सकता हूँ। पिशिमा को श्रील गुरु महाराज के प्रति बड़ा आदर और प्रेम था तथा वे भी उन्हें अपने शिष्य की भांति चाहते थे। वे एक कठोर महिला थी तथा भगवान कृष्ण की महान भक्त थीं। इसलिये हर कोई उनका आदर करता था तथा उनके विचार को बड़ी महत्ता से देखा जाता था।

एक दिन कुछ उत्सुक सन्यासियों ने उनसे पूछा—"नवद्वीप का श्रीचैतन्य सारस्वत मठ किस प्रकार चल रहा है? क्या वे ठाट से खा रहे हैं अथवा खाना नहीं पा रहे हैं?"

पिशिमा ने उत्तर दिया, "ओह वह मठ बड़ा शानदार है, तुम उसका अनुमान नहीं कर सकते। राधा गोविन्द सुन्दर की फर्श एवं बरामदे की देख भाल लक्ष्मी स्वयं करती हैं। वहां श्रीचैतन्य सारस्वत मठ की वास्तविक स्थिति यह है।"

जब श्रील गुरु महाराज ने यह सुना तो कहा—"ओह। पिशिमा ने उसे बड़ सुरक्षात्मक ढग से व्यक्त किया है। यदि उन्होंने कहा होता, 'लक्ष्मी-देवी स्वय श्रीधर महाराज के मठ की फर्श आदि की देख-रेख करती हैं, तो मैं अपराध के सागर में गिर जाता, किन्तु उन्होंने कहा, "वे राधा-गोविन्द की फर्श को देख रही हैं, और यह अच्छा है। हम उसे मान सकते हैं, हम उनकी बात का आदर करते हैं।'

लक्ष्मी-सहस्र-शत-संभ्रम-सेव्यमानं। यह हमारे चिन्मय शरीर की मनस्थिति है: हम कृष्ण की सेवा हेतु सदा तत्पर हैं तथा अपने दिव्य गुरु के आदेश की प्रतीक्षा में हैं।

कृष्ण के द्वादश मन्दिरों की भांति तिलक छाप एवं गले में सुन्दर तुलसी माला से हमारा चिन्मय शरीर बड़ा भव्य सज्जित हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र हमारे हृदय में है। अपने दिव्य गुरु के निर्देशन

में हमें उस शरीर से कृष्ण की सेवा करनी है। यही हमारा ध्यान है, और हमें वह चाहिये। हम एक लौकिक रूप में साधना कर रहे हैं किन्तु गुरुदेव की कृपा से तथा अपनी भक्ति से, हम उसे अवश्य प्राप्त करेंगे। वही हमारी एक मात्र आशा है तथा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी एवं श्रील रूप गोस्वामी द्वारा यही बतलाया गया है।

श्रील दास गोस्वामी के दिव्य-श्लोक, 'आशाभरैरमृत-सिन्धु-मायैः कथंचित को मैंने आपको पहले ही बताया है.....श्रील रूप गोस्वामी ने एक दूसरा श्लोक दिया है—वह भी बड़ा सुन्दर है :

विरचय मयि दंडं दीनबन्धो दयां वा
गतिरिह न भवन्तः काचिदन्या ममास्ति
निपाततु शत-कोटिर्निर्भरां वा नवाम्भस
तद् अपि किल पयोदह स्तूयते चातकेन

"हे दीन बन्धो, हे कृष्ण 'मैं आपके चरणारविन्दों में पूर्णतया प्रणत हूँ। आपकी कृपा के बिना मुझे कुछ नहीं चाहिये—यह मेरे जीवन का व्रत है। मैं अन्य लोगों की प्रशंसा नहीं करूंगा और मुझे किसी अन्य स्रोत से और कुछ नहीं चाहिये। मुझे आपकी दैवी कृपा मात्र की आकांक्षा है।" इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामी ने भी एक भक्त के हृदय का चित्रण किया।

श्रील रूप गोस्वामी ने अनेक पुस्तकों की रचना की। हम जैसे बद्ध प्राणियों के लिये उन्होंने बहुत कुछ दिया है। चाहे जैसे हो हमारी क्रियायें गुरु, वैष्णव एवं भगवान की सेवा में अर्पित होनी हैं तथा एक दिन हमें वह दिव्य दृष्टि प्राप्त करनी है। उस दृष्टिसे हम सब कुछ देख सकेंगे—कृष्ण-धाम, व्रज-धाम, वृन्दावन-धाम। वहां हमें ब्रजवासियों, श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीरघुनाथ तथा अन्य गोस्वामियों की कृपा प्राप्त होगी। उनकी कृपा से हमें श्रीश्रीकृष्ण चन्द्र एवं श्रीराधा रानी की सेवा प्राप्त होगी। यही हमारी एकमात्र आशा, और जीवन का एकान्तिक ध्येय है।

अध्याय--६

मधुर सेवा

भक्त : मुझे लगता है कि श्रील भक्ति विनोद ठाकुर तथा श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद ब्राह्मणों से वैष्णवों को ऊपर दिखाकर ब्राह्मणों को पराजित करने में लगे थे। सभाओं में दिग्गज ब्राह्मणों ने पराजय स्वीकार कर ली किन्तु बाद में वे सब भूल गये। क्या ऐसा इसलिये है कि वह एक गुप्त कोष है और उसे केवल मुक्त आत्मायें ही प्राप्त कर सकती हैं ? यदि ऐसा नहीं है तो पराजय के बाद उन्हें अवश्य स्मरण रहता कि वैष्णव मात्र 'ब्राह्मणवाद' से ऊपर हैं तथा उन्हें उनका अनुसरण करना चाहिये।

श्रील गोविन्द महाराज : हां। यह भी सत्य है कि कृष्ण के विश्वरूप को बहुत लोगों ने देखा। कर्ण, दुर्योधन, दुश्शासन, इन सब लोगों ने कृष्ण के विश्वरूप को देखा और वे स्तब्ध रह गये। जो कुछ देखा उससे वे चकित रह गये किन्तु उन लोगों ने सोचा कि वह एक जादू था : कृष्ण का जादू। धृतराष्ट्र भी उसे देखने को बड़े उत्सुक थे। महाभारत में उन्होंने कहा, "हे कृष्ण, हर कोई आपके विश्वरूप को देख रहा है, किन्तु मैं नहीं देख सकता क्योंकि मेरे आँखें नहीं हैं। कृपया मुझे दस-पांच पलों के लिये आंखें दे दीजिये जिससे मैं उसे देख सकूं।"

कृष्ण ने उत्तर दिया, "मेरे लिये आपको नेत्र प्रदान करना आवश्यक नहीं है। यदि मैं कह दूं तो आप देख सकेंगे।" तब धृतराष्ट्र ने कृष्ण के विस्मयकारी विश्वरूप को देखा। फिर वे कृष्ण के समक्ष विनम्र हो गये। किन्तु बाद में वे सब कुछ भूल गये।

एक भक्त ने अभी हाल में मुझे एक महत्वपूर्ण प्रश्न लिख भेजा। उसने पूछा, "गुरुदेव का क्या स्थान है ?"

शास्त्रों में हम देखते हैं : साक्षात्-धरित्वेन समस्त-शास्त्रैः— गुरुदेव कृष्ण से अभिन्न हैं। किन्तु अन्यत्र शास्त्रों में उल्लेख है,

'आचार्य मां विजानीयात्, नावमन्येत कहिंचित्।' कृष्ण कहते हैं, मैं गुरु हूँ। मैं गुरु के रूप में अपने को प्रकट करता हूँ।"

दूसरे स्थान पर हम देखते हैं कि गुरुदेव का दर्जा साक्षात् बल्देव का माना गया है—बल्देव से अभिन्न। गुरुदेव नित्यानन्द प्रभु से अभिन्न हैं और नित्यानन्द प्रभु बल्देव से अभिन्न हैं भक्त अपने गुरु-देव की पूजा बल्देव के रूप में करते हैं—नित्यानन्द प्रभु के रूप में।

एक और स्थान पर शास्त्रों का कथन है कि गुरुदेव श्रीराधा रानी हैं। हम भी नोट कर सकते हैं कि बल्देव का एक रूप मंजरी : अनंगमंजरी का है।

अतएव सत्य क्या है और उसका समन्वय कैसे हो ? उस भक्त द्वारा रखा गया प्रश्न यह था। हर बात का समन्वय आवश्यक है तब हम समझ सकेंगे कि क्या क्या है ? पहले यह जानना आवश्यक है कि कृष्ण की स्थिति क्या है। वे परमात्मा के सुपरम साकार-सगुण रूप है। यह प्रथम प्रश्न है।

जब हम गुरुदेव की स्थिति देखना चाहते हैं तो सर्वप्रथम एक आभा देखेंगे—यह चमत्कार कि सब कुछ उनमें से ही उत्क्रमित होता है। और जिससे सब कुछ उत्क्रमित होता है वह कृष्ण है। किन्तु कृष्ण अकेले नहीं है। वे स्वशक्ति शक्तिमान हैं। कृष्ण अपनी शक्ति के साथ हैं। जब कृष्ण और उनकी शक्ति लीला हेतु आते हैं तो उनका रूप राधा-कृष्ण हो जाता है। ऐसा नहीं है कि यह सब कुछ काल के लिये होता हो अपितु यह शाश्वत है। ऐसा नहीं है कि कल ऐसा रहा हो किन्तु उससे पहले वाले दिन कृष्ण अकेले रह हों। नहीं। सब कुछ शाश्वत एवं अलौकिक है, अतः सब कुछ चेतना में स्थित है। और वह चेतना कृष्ण चेतना है तथा कृष्ण भगवान के परम पूर्ण रूप हैं। यह पहली बात है जिस पर हमें विचार करना है।

अन्यत्र हम देखते हैं :

यद्यपि असृज्य नित्य चिद्शक्ति-बिलास लीलाओं का सृजन कोई नहीं कर सकता तथा कृष्ण स्वयं भी लीलाओं का सृजन नहीं करते। उनकी लीलायें शाश्वत हैं, अतः उनका सृजन किसी ने नहीं

किया। अपनी शक्ति के साथ परम भगवान शाश्वत हैं और शक्ति कभी कृष्ण के साथ जुड़ जाती है तो कभी अलग हो जाती है। उसके पृथक् हो जाने पर भी, कृष्ण के साथ सम्पूर्ण शक्ति है।

भक्त : यह अन्तिम वाक्य समझने में बड़ा कठिन है।

श्रीगोविन्द महाराज : शक्ति है और शक्तिमान है। यदि तुम शक्तिमान से शक्ति निकाल दो तो क्या शक्तिमान के पास तब भी शक्ति रह जाती है ?

भक्त : हां।

श्रील गोविन्द महाराज : शक्तिमान से शक्ति निकाल दो जाय तब भी शक्तिमान के पास पूर्ण शक्ति रहती है—इसे अचिन्त्य कहते हैं।

भक्त : क्या विभव-विलास जैसा अंश का विस्तार भी इस सिद्धान्त का पालन करता है जब वह स्वयं बिना किसी क्षय के अन्य रूपों में अपने को प्रसारित करता है ? श्रील गोविन्द महाराज : हां। श्रील कृष्ण दास कविराज गोस्वामी द्वारा एक उदाहरण दिया गया है : यदि एक बत्ती से दूसरी बत्ती जलायी जाती है तो दूसरी बत्ती अपनी पूरी क्षमता से प्रकाशित होती है किन्तु वह मूल बत्ती को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाती।

राधा-कृष्ण एक आत्मा, दुइ देह धारी
अन्योन्ये विलासे रस आस्वादन कारी
सेइ दुइ एक एबे चैतन्य गोसाईं
रस आस्वादिते दोहें हैला एक ठाईं

(श्रीचैतन्य चरितामृत, आदि लीला ४ ५६ ८५)

राधा और कृष्ण, शक्ति एवं शक्तिमान अवियोज्य हैं, किन्तु जब वे क्रीड़ा करना चाहते हैं तो अपने को पृथक् रूप में आरोपित कर सकते हैं। वे शक्ति-सम्पन्न हैं और उनकी शक्ति भी शक्ति से भरपूर है ! यह मूल बात है।

कृष्ण जब लीला करना चाहते हैं, तो उनकी शक्ति की प्रथम

अभिव्यक्ति बल्देव, मूल संकर्षण हैं। वे कृष्ण से उद्भूत होते हैं—उनके प्रभव विलास हैं। राधारानी से योगमाया स्वयं उत्पन्न होती हैं। योगमाया एवं मूल सकर्षण एक साथ ही प्रकट होते हैं।

निर्णायक की भांति योगमाया क्रीड़ा भूमि का प्रभार संभालती हैं। वे नियमादि ऐसा बनाती हैं कि कृष्ण को प्रसन्न कर सके और उसकी इच्छासे हर वस्तु तदनुसार अभिव्यक्त हो जाती है।

कृष्ण जब क्रीड़ा की इच्छा करते हैं तो सब कुछ योगमाया द्वारा तत्काल उपस्थित और व्यवस्थित कर दिया जाता है। बल्देव सारा प्रसाशन संभालते हैं और अपना दायित्व योगमाया को सौंप देते हैं। शक्तिमान से संकर्षण आते हैं और राधारानी से योगमाया आती हैं।

भक्त : संकर्षण बलराम के नामों में से एक है ?

श्रील गोविन्द महाराज : हां मूल संकर्षण।

भक्त : तथा बाद में अनेक संकर्षण प्रकट हो जाते हैं ?

श्रील गोविन्द महाराज : हां : चतुर्व्यूह। कृष्ण तथा राधारानी के अनेक विस्तार हैं—प्राभव विलास, वैभव विलास इत्यादि किन्तु उच्चतर धरातल पर राधा-कृष्ण, संकर्षण तथा योगमाया क्रीड़ारत है। ये चारों वहाँ सहभागी होते हैं।

भक्त : गोलोक वृन्दावन में चतुर्व्यूह नहीं हैं ?

श्रील गोविन्द महाराज : नहीं, वे वैकुण्ठ में हैं। जब गोलोक वृन्दावन लौकिक जगत में उतरता है तथा अपनी चमक दिखलाता है, तो वे लीलायें वैकुण्ठ अथवा अन्यत्र प्रकट हो सकती हैं। उनमें ऐसी शक्ति है और सब कुछ पूर्ण है। वेद में लिखा है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्यपूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते

कृष्ण पूर्ण हैं और राधारानी पूर्ण हैं। शक्ति जब शक्तिमान से निकलती है तो वह भी पूर्ण होती है। उस धरातल की लीला पक्ष, प्रतिपक्ष तथा समन्वय के अविराम-चक्र से विकास करती है।

भक्त : वहाँ भी ! श्रील गुरु महाराज ने कहा कि सारी समस्यायें ऊपर से आरंभ होती हैं।

श्रील गोविन्द महाराज : किन्तु वहाँ कुछ भी बुरा अथवा गलत नहीं हैं। सभी, चाहे वे शक्ति के धारक हों अथवा शक्ति स्वयं, वे परम शक्ति तथा शक्ति मान राधा-कृष्ण के संतोषके लिये पूजा करते हैं।

हम शक्तिमान को संतुष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं, तथा अति की स्थिति में हम देख सकते हैं कि कृष्ण को प्रसन्न करने के प्रयत्न में राधारानी सर्वोच्च पद पर आसीन रहती हैं।

भक्त : क्या यही कारण है कि नित्यानन्द प्रभु तक अपने को मंजरी, अनंग मंजरी के रूप में विस्तारित करना चाहते हैं ? वे शक्ति से उत्पन्न होते हैं किन्तु वे शक्तिमान को सेवा प्रदान करना चाहते हैं।

श्रील गोविन्द महाराज : हां, नित्यानन्द प्रभु स्वयं मूल संकर्षण बलराम के रूप में मधुर रस का पान करते हैं। किन्तु उनका यह आनन्द कृष्ण के संतोष के लिये है।

भक्त : क्या बलराम का रास नृत्य कृष्ण के रास-नृत्य से भिन्न है ?

श्रील गोविन्द महाराज : हां। कृष्ण बलराम के हृदय में निवास करते हैं। जब बलराम रासलीला में निमग्न होते हैं, तो कृष्ण की रास लीला आन्तरिक चलती है।

दूसरा उदाहरण है कि शरीर से कोई वृद्ध हो सकता है किन्तु मनोभाव फिर भी युवा बना रहे। एक वृद्ध में एक नवयुवक की भांति कार्य करने की शारीरिक शक्ति भले न हो परन्तु उसकी मानसिकता युवक की ही बनी रहती है—कभी कभी उसका मन एक युवक से भी अधिक उत्साहपूर्ण हो सकता है।

संकल्प की वह शक्ति कृष्ण की लीला में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, और वह है एक गोपी के रूप में। जब संकर्षण कृष्ण को मधुर रस में विभार करना चाहते हैं तो वे वैसा एक नर शरीर में

नहीं कर सकते। इसलिये उन्हें रूपान्तरित होना है तथा श्रीराधा-रानी के निर्देशन में जाना है।

वहां भी हमें गुरुदेव का रूप प्राप्त होगा। गुरुदेव कर क्या रहे हैं ? वे कृष्ण को सेवा प्रदान कर रहे हैं। कृष्ण की प्रसन्नता के लिये वे हमें बचाने हेतु एक रस्सी देते हैं और वे हमें कृष्ण के पाद पंकजों में अर्पित पुष्पवत् स्वीकार करते हैं।

बलदेव प्रथम गुरु हैं। यदि हम बलदेव को देख सकें तो पायेंगे कि वे प्रथम गुरु हैं तथा वे हमें लेकर कृष्ण के चरणारविन्दों में निछावर करना चाहते हैं। हम देखेंगे कि बलदेव गुरुदेव हैं।

जब हम कृष्ण की शक्ति देखते हैं, तो पायेंगे कि वह (गोपी) सर्वोपरि है और कृष्ण के मन को सर्वाधिक रंजित करती है। वह उन्हें अतीत आनन्द प्रदान करती है। उसे देखकर भक्तगण भी सेवा के एक सुअवसर के लिये लालायित हो उठते हैं। वे तत्काल संभावना की खोज कर लेते हैं तथा सखियों एवं मंजरियों के पीछे हो लेते हैं। इस प्रकार उनकी सेवा राधारानी को प्राप्त होती है।

श्रीराधारानी कृष्ण को सर्वाधिक तृप्ति प्रदान करती हैं। वे मधुररस के महासिन्धु की स्वामिनी हैं। वे उस सम्पत्ति की सर्वाधिकारी हैं: इसलिये बलदेव सहित जिस किसी को कृष्ण की सर्वोच्च सेवा करनी है, उसे राधारानी के निर्देशन में जाना अनिवार्य है। किन्तु राधारानी किसी को सीधे-सीधे कुछ नहीं देती क्योंकि उनके पास समय नहीं है। वे कृष्ण की सेवा में सदैव व्यस्त रहती हैं और उसके लिये सतत सामग्री की खोज में रहती हैं। उन्हें उसकी आपूर्ति करने वाली अष्टसखियां हैं। सखियां सेवा हेतु केवल विविध सामग्री ही नहीं जुटातीं अपितु वे विभिन्न वस्तुयें बनाती भी हैं। वे अनेक प्रकार के सुन्दर व्यंजन बनाती हैं। आलुओं से वे हजारों-हजार प्रकार के व्यंजन भोग हेतु बनाती हैं। इस प्रकार वे कृष्ण के भोग हेतु अनेक पदार्थ बनाती हैं और उन सबसे राधारानी कृष्ण की सेवा करती हैं।

कृष्ण कभी कभी बड़े नटखट हो उठते हैं और सखियों से मिलना चाहते हैं किन्तु वे कृष्ण के साथ सीधा संयोग नहीं चाहतीं।

सखियों की मानसिकता उस प्रकार की नहीं है, उनकी एकमात्र आकांक्षा कृष्ण की संतुष्टि है। वे जानती हैं कि कृष्ण राधारानी से पूर्ण संतुष्ट हैं तथा वे सब कुछ जुटाती हैं। किन्तु राधारानी स्वयं विविध लीलानन्दों के लिये सखियों को कृष्ण को अर्पित करती हैं। वे साक्षात् संयोग हेतु उन्हें कृष्ण की ओर ढकेलती हैं। तब सखियां राधारानी की संतुष्टि हेतु, न कि कृष्ण की संतुष्टि हेतु, कृष्ण के साथ सम्मिलित होती हैं। कृष्ण की वृन्दावन लीला इस प्रकार चलती है।

जो अपने लोकोत्तर सेवा-जीवन का पूर्ण लाभ चाहता है उसे एक नारी की स्थिति ग्रहण करनी होगी। वस्तुतः सभी जीवात्मायें आन्तरिक प्रकृति से नारी ही हैं—वे शक्ति, जीव-शक्ति हैं। एक नारी रूप धारण करके वे राधा-कृष्ण की लीला में सम्मिलित होने की इच्छा रखती हैं : वे सखियों एवं मंजरियों की कृपा हेतु सदैव प्रार्थना करती रहती हैं। कृष्ण उनके स्वामी नहीं, अपितु उनके लीला-सहचर हैं। सखियां स्वामी का स्थान ले लेती हैं। वे जानती हैं कि कृष्ण कैसे संतुष्ट होंगे और वे तदनुसार व्यवस्था करती हैं। सखियां राधारानी से मार्ग दर्शन प्राप्त करती हैं। तथा तदनुसार कृष्ण को तृप्त करने का प्रयास करती हैं। वे राधारानी की अनन्य सेविकायें हैं और कृष्ण भी उस रूप में उनके साथ आह्लाद-मग्न हैं।

भक्त : क्या वहां प्रतियोगिता है ?

श्रील गोविन्द महाराज : अपने लिये नहीं अपितु सेवा के लिये प्रतियोगिता है। कभी कभी भावों के अन्दर विरोध भी हो सकता है : जब कृष्ण ने वृन्दावन छोड़ा राधारानी मूर्छित हो गयीं।

व्यापक रूप में लीलानन्दातिरेक की स्थिति में कभी कभी विरोध प्रकट होते हैं किन्तु कृष्ण और राधारानी को उससे और अधिक सुख मिलता है। राधारानी अपने समक्ष जब कृष्ण को देखती हैं तो वे एक कृष्ण को देखती हैं और वे एक कृष्ण को संतुष्ट करना चाहती हैं। किन्तु जब अपने को उनसे छिपा लेते हैं तो वे कृष्ण को सर्वत्र देखती हैं तथा सर्वत्र उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करती हैं। वह भाव विरह कहलाता है।

हम गुरु की स्थिति सर्वत्र देख सकते हैं किन्तु वह सब कृष्ण की लीलाओं के भीतर है। कृष्ण का अर्थ है दाम्पत्य शक्ति तथा शक्तिमान और वह पूर्ण कृष्ण है। यह उस धरातल से है कि कृष्ण उतर कर आते हैं तथा कहते हैं, आचार्यं मां विजानीयान्, "मैं गुरु हूँ।"

कृष्ण जब कहते हैं "मैं तुम्हारा गुरु हूँ" तो वह कृष्ण की पूरी अवधारणा नहीं है। उनके अनेक अवतार हैं: वे युगावतारों के रूप में आते हैं, वे अपने को एक शिक्षक के रूप में प्रस्तुत करते हैं और जैसा कि जब कौरवों एवं पाण्डवों के शिक्षक बने। कृष्ण के विविध मन और रूप हैं तथा उसी का एक प्रकार है उनका गुरु होना। इसीलिये वे कहते हैं, "आचार्यं मां विजानीयान्, नावमन्येत कर्हिचित।"

जिसका अर्थ है, "जब तुम अपने गुरु के चरणार्विन्दों का आश्रय लेते हो तुम सोचोगे कि वह मैं स्वयं हूँ जो तुम्हें भवसागर के जाल से मुक्त कराकर दिव्य लोक में ले जाने हेतु तुम्हारे समक्ष स्वयं उपस्थित हूँ।" कृष्ण का ऐसा रूप है जिसे हम वहां प्रकट देखते हैं: आचार्य रूप।

कृष्ण के सारे पक्ष सत्य हैं। एक सत्य यह है कि बद्ध आत्माओं के उद्धार हेतु वे आचार्य के रूप में प्रकट होते हैं। वे जब इस रूप में प्रकट होते हैं तो बद्ध आत्माओं के प्रति बड़े कृपालु होते हैं। कृष्ण उनकी दुखद स्थिति को सहन नहीं कर सकते इसलिये उनको,उनकी दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति से उबारने हेतु आचार्यं के रूप में प्रकट होते हैं: आचार्यं मां विजानीयान्।

किन्तु जब दिव्य सेवा जगत में मुक्तात्मायें सेवा करना चाहती हैं तो उनका भी अपना एक स्वामी होता है तथा शक्तिमान की शृंखला में वे उन्हें एक बलराम, नित्यानन्द के रूप में देखेंगे। यदि वे उस मार्ग का अनुसरण करते हैं तो वे उस अवधारणा से कृष्ण के पास जायेंगे। वहां नित्यानन्द प्रभु तथा बल्देव उनके गुरु के रूप में होंगे। यह अवधारणा उस परम दिव्य धरातल से आती है जहां कृष्ण अपनी शक्ति के साथ उपस्थित हैं। इससे एक कदम

नीचे मूल संकर्षण का रूप है और भगवान की लीला हेतु वह प्रकट होता है। उस क्षेत्र में गुरु के अनेक रूप हैं। उनकी लीला उनकी चित् शक्ति तथा साथ ही जीव शक्ति के साथ, एवं एक निषेधात्मक रूप में माया-शक्ति के साथ सम्पन्न होती है।

एक धरातल पर योगमाया है। मूल संकर्षण की इच्छा से समूचा दिव्य जगत योगमाया द्वारा अधिग्रहीत कर लिया जाता है। कृष्ण के प्रति उनमें पूर्ण चेतना है, इसलिये कृष्ण की लीला हेतु वह उनके संतोष हेतु हर वस्तु प्रस्तुत करती है। वृक्ष, मोर, हिरण, फूल आदि सब कुछ योगमाया के विस्तार हैं।

भक्त : क्या वहां योगमाया का रूप एक गोपी का है ?

श्रील गोविन्द महाराज : हां। वृन्दादेवी योगमाया की विस्तार एवं प्रतिनिधि हैं। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती विरचित अष्ट-कालीय लीला के प्रथम श्लोक में यह उल्लेख है।

जब जीवात्मा एक गोपी का रूप धारण करती है तो मंजरियों के मार्गदर्शन में वह अपने स्वामी को सन्तुष्ट करने का प्रयास करती है तथा वे देखती हैं कि राधारानी कृष्ण की सर्वोच्च संतुष्टि प्रदाता हैं। राधारानी की देख-रेख में वे कृष्ण को संतुष्ट करने का प्रयास करती हैं। कृष्ण की सेवा के लिये राधारानी परम गुरु हैं।

हम रूपानुगा सम्प्रदाय के हैं : हम रूप गोस्वामी के अनुयायी हैं। वास्तव में हम यह दावा नहीं करते हम ठीक से अनुगमन कर पा रहे हैं, किन्तु हम अनुगामी बनने का प्रयास अवश्य कर रहे हैं। एकमात्र गन्तव्य जो हम देख सकते हैं वह हैं राधारानीका चरणार-विन्द। राधारानी बड़ी कृपालु हैं। वे अपने को अनेक रूपों में व्यक्त कर सकती हैं। इसलिये वे मेरे सामने भी आ सकती हैं–गुरुदेवके रूप में। वे जो देखना चाहती हैं वह है हमारा सेवा का भाव।

एक इतिहास है जिसे मैंने १९४७ में कुसुम सरोवर पर श्रील गुरु महाराज से सुना था। जब मैंने वह स्थल देखा तो श्रील गुरु महाराज ने मुझे बतलाया कि एक दिन राधारानी अपनी सखियों एवं मंजरियों के साथ फूल बीनने आयीं। वे एक बड़े दल में आयीं और फूल चुने। तत्क्षण राधारानी का ध्यान एक ग्यारह साल के

लगभगकी कन्या पर पड़ा और वे बोलीं, "आह ! वह कितनी रूपसी बाला है । वह हमारे साथ कब आ गयी ?

ललितादेवी ने उत्तर दिया, "रूप मंजरी उसे अपने गांव से लायी और मैंने उसे रूप मंजरी के वृन्द को दे दिया । वह रूप मंजरो के सौजन्य से आपके महामहिम की सेवा कर रहो है ।"

श्रीराधारानो ने कहा, "वह इतनी सुन्दर कन्या है और वह और अधिक सेवा कर सकती है ।" तथा राधारानी ने अपना सेवा कार्य जारी रखा ।

यह इतिहास मैंने श्रील गुरु महाराज से सुना तथा इसे मैं भूल नहीं सकता । ऐसा सौभाग्य किसी को तत्काल मिल सकता है तथा रूप गोस्वामी हमें उस रूप में ले जा सकते हैं । ललिता देवी भी बड़ी कृपालु हैं और वे अपने अनुग्रह को हमें तत्काल प्रदान कर सकती हैं ।

राधारानी की बहुत सखियां हैं किन्तु आठ प्रधान हैं । सखियां सहस्रों हैं और उनके समूह हैं । मंजरियों के हजारों समूह हैं । हमें सर्वप्रथम यह याद रखना है कि इस विषय का सम्बन्ध चिन्मय विश्व से है । पलभर में वह अपना विस्तार सहस्रों योजनों तथा और अधिक में कर सकता है ।

पूर्वकाल में मेरे मन में एक जिज्ञासा थी और मैंने श्रील गुरु महाराज से पूछा, "राधाकुण्ड यहां है किन्तु बरसाना यहां से कई किलोमीटर दूर है, तो राधारानी यहां प्रतिदिन कैसे आती थीं तथा वे बरसाने से फूल लेने हेतु कुसुम सरोवर किस प्रकार जाती थीं ।"

श्रील गुरु महाराज ने समझाया, "यह चिन्मय जगत है जहां कृष्ण की लालीओं के लिये, उनके आनन्द के लिये विस्तार एवं संकोच अनवरत होता रहता है । ऐसा राधारानी की इच्छा से होता है तथा योगमाया पूरी व्यवस्था करती हैं । जब आवश्यकता पड़ती है तो दूरियां बहुत छोटी हो जाती हैं । और जब आवश्यकता पड़ती है दूरी बहुत लम्बी हो जाती है जैसे कि यमुना के पुलिन विस्तीर्ण हो उठते हैं । कृष्ण की सेवा के लिये, हर वस्तु उनकी तृप्ति के लिये अविलम्ब उपयुक्त रूप ग्रहण कर लेती है ।"

एक प्रकार से परम गुरु बल्देव के रूप में हैं। एक सामान्य रूप में कृष्ण सेवा का अपना निजी मार्ग दिखलाते हैं तथा वे गुरु बन जाते हैं। गुरु के रूप में वे भौतिक जगत में अपना स्वरूप अभिव्यक्त करते हैं। गुरु के रूप में उनका स्थान भक्तों के हृदय में भी होता है। सबसे बड़ी बात तो यह कि जहां कृष्ण के प्रति अतिशय सेवा के विविध रूप हों, वह मधुर रस है। उस धरातल में कृष्ण की परम आह्लादिनी शक्ति राधारानी हैं। और यही हमारी दिशा तथा जीवन का लक्ष्य है।

हम केवल आशय करते हैं कि किसी दिन गुरुदेव की कृपा से ऐसा हो जाय। हमें वहां प्रवेश मिलेगा अथवा नहीं यह हमारे दल के नेता, हमारे गुरुदेव की इच्छा है।

भाग - २

सार्वभौम कृपा

श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज द्वारा
सान्ताक्रुज, कैलीफोर्निया के लॉडेन नेल्सन सेन्टर
पर ३०. ६. १९९२ को दिया गया भाषण

ॐ अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितम् येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

वांछा कल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ।।

नमो महा वदान्याय कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्णचैतन्य-नाम्ने गौरत्विषे नमः ।।

समादरणीय भक्तगण, मेरे प्रिय गुरु भाइयो तथा बहनो, सामान्य महानुभाव एवं देवियो ! आपकी कृपा से मैं आप सबसे मिलने यहाँ आया हूँ तथा कृष्ण चेतना के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करने हेतु मैं आपके साथ कुछ समय बिताना चाहता हूँ । मैं उतना विद्वान नहीं हूं और विशेष कर मैं अंग्रेजी में बहुत कमजोर हूँ । किन्तु मेरे प्रति आप का बड़ा स्नेह है और आप मेरे शुभ चिन्तक हैं, अतः मैं कृष्ण चेतना के विषय में कुछ कहना चाहूँगा ।

मैं यहां पश्चिम में क्यों आया हूँ ? इससे पूर्व कृष्ण चेतना की दिशा में एक महान अग्रणी श्रील ए. सी. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने कृष्ण चेतना के प्रचार की, विशेषकर पश्चिमी जगत में, महती आवश्यकता अनुभव की । उसके लिये वे प्रतीक्षा में रुके नहीं अपितु जितने शीघ्र संभव हो सका उन्होंने यहां आने का उपक्रम किया । तथा वे अकेले आये । किन्तु वह भावना क्या थी जिसे लेकर वे आये । वस्तुतः वे करना क्या चाहते थे और क्यों ? उसी चेतना से मेरा सम्बन्ध भी है और मैं कह सकता हूँ कि बद्ध आत्माओं की यह सबसे बड़ी आवश्यकता है । जो इसे समझ सकता है वह उस

चेतना का कुछ वितरण किये बिना रह नहीं सकता। श्रील प्रभुपाद की यह स्थिति थी। उनके अन्दर प्रपंचात्मक जगत में दुख भोगने वाली बद्ध आत्माओं के प्रति अपार करुणा थी। बद्ध जीव यह नहीं समझ पाते कि उनके सच्चे जीवन, शाश्वत जीवन के लिये क्या उपादेय हैं। वह भावना उन्हें पश्चिम खींच लायी। निस्सन्देह उनके गुरुदेव श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ने उन्हें पश्चिममें प्रचार करने का आदेश दिया, किन्तु श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने यह आदेश अन्य सभी शिष्यों को दिया।

श्रील स्वामी महाराज के हृदय में लोगों के प्रति शुभ कार्य करने की गहरी भावना थी। उन के पास पैसा नहीं था न उतना अनुभव ही, परन्तु उनमें उत्सुकता, प्रेम और एक सात्विक हृदय था। एक भरपूर करुणार्द्र हृदय से वे जीवात्माओं में ज्ञान और कृष्ण चेतना के अभाव को सहन नहीं कर सके और जैसे ही संभव हुआ उन्होंने पश्चिम आने का प्रयत्न किया। उन्होंने कृष्ण चेतना प्रदान करने का अथक प्रयास किया तथा प्रथम बर्ष अनेक प्रकार से कठिनाइयां झेलीं। किन्तु उनकी लगन और गहरी भावना ने कृष्ण चेतना के प्रचार में उन्हें सफलता दिलायी।

उन्होंने अकेले आरंभ किया। किन्तु "एकोऽहम्, बहुस्याम :– मैं एक हूँ अनेक हो जाऊं" यह उपनिषद का एक सूत्र है। भगवान परमात्मा पहले एक था। फिर वह अनेक हो गया। प्रेम के वशीभूत उसने अपने को असंख्य रूपों में प्रकट किया। इसी प्रकार श्रील स्वामी महाराज जिनका हृदय दिव्य प्रेम से भरा था, कृष्ण चेतना का प्रचार-प्रसार करना चाहते थे। उनकी मान्यता थी कि वह बद्ध जीवों के लिये अत्यन्त आवश्यक है और यदि वे उसे नहीं पाते, तो वे क्या प्राप्त करेंगे ? और वे किस प्रकार जियेंगे ?

वास्तव में वे बहुत उद्विग्न थे और समझ नहीं पाते थे कि बद्ध आत्मायें भ्रमात्मक पर्यावरण में क्यों भटक रही हैं। उनकी भावना बड़ी तीव्र थी। वे कुछ देना चाहते थे और उन्होंने उसे सर्व प्रथम पश्चिमी जगत को दिया।

मैं आप सबसे—अपने मित्रों तथा उनके परिवारों से मिलने

आया हूँ। मुझे आप से कृपा प्राप्त हुयी है। इसलिये मैं आ सकता हूँ। 'कृपा' का अर्थ है आपका स्नेह। स्नेह ने आपसे मिलने के लिये मुझे आकर्षित किया और यह प्रेम कृष्ण चेतना के माध्यम से विकसित हुआ है। अन्यथा मैं भारत में रहता हूँ और आप अमेरिका में—हम इतनी दूर रहते हैं! किन्तु लगाव, आकर्षण और स्नेह आदि कृष्ण चेतना के माध्यम से विकसित हुये हैं तथा इस प्रकार मुझे यहां आने और आप सब से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैं आपको क्या दे सकता हूँ? आपके पास सारी भौतिक वस्तुयें हैं। किन्तु कृष्ण चेतना का कोई अन्त नहीं है। हम केवल आरभ कर सकते हैं और आगे बढ़ सकते हैं, किन्तु हम पायेंगे कि कृष्ण चेतना का कोई अन्त नहीं है। वह असीम है। कृष्ण चेतना अनन्त है।

कृष्ण की सेवा के लिये अनेक प्रकार के भाव तथा सम्बन्ध हैं। अनन्त के साथ हमारा सम्बन्ध हमें सदैव वह अनन्त स्थिति प्रदान कर रहा है। तथा उस अनन्त जगत में हमारा सेवा भाव भी अनन्त रूप से कार्य करेगा। वह गोलोक वृन्दावन है। कुछ लोग अन्तिम धरातल को परव्योम अथवा वैकुण्ठ मान सकते हैं, किन्तु आधारभूत आवश्यकता कृष्ण चेतना की साधना की है, और वह हमारे जीवन का ध्येय है। हमारा वास्तविक रूप अतीन्द्रिय है, विघटनात्मक नहीं, तथा सेवा-जगत में कोई स्थान प्राप्त कर सकने की पूरी संभावना है। हमारे पास वह संभावना और स्वरूप है। यदि किसी प्रकार कोई प्रबुद्ध आत्मा हमें उस दिव्य जगत से जोड़ सके तो हम वहां सब कुछ प्राप्त कर लेंगे। श्रील स्वामी महाराज के हृदय में यह भाव था। भारत में अपने मिशन के प्रचार हेतु उन्होंने कई प्रकार से प्रयास किये, किन्तु अन्त में सोचा, 'मेरा स्थान पश्चिम में है और वहां मैं कुछ करने का प्रयत्न करूंगा।"

सारे धर्म हमें सदैव कुछ न कुछ दिखला रहे हैं। कुछ स्वर्ग दिखला रहे हैं, कुछ वैकुण्ठ और कुछ गोलोक। किन्तु सारे धर्म हमें ऊपर उठाने का प्रयास कर रहे हैं, नीचे गिराने का नहीं। धर्म का यही स्वरूप है।

हर व्यक्ति में यह जानने की उत्सुकता है कि भारतीय धर्म क्या है? किन्तु वास्तव में धर्म न भारत के लिये है न अमेरिका के

लिये, धर्म जीवात्मा के लिये है। जीवात्माओं की सनातन सत्ता है जो कि चिन्तन, भावना तथा क्रिया है। उनका धर्म है अपने प्रभु भगवान कृष्ण की सेवा तथा दिव्य जगत की सेवा। वहां हम सारे सुख, सारे आनन्द, समस्त सौन्दर्य, माधुर्य तथा दिव्य प्रेम पाते हैं। अपनी बद्ध अवस्था में जो कुछ हम इस भौतिक जगतमें चाहते है–उससे परे, दिव्य लोक में, वह दिव्य प्रेम बाहें पसार कर आलिंगन हेतु सतत हमारी प्रतीक्षा में है। यह वास्तविक स्थिति है, और जो इसे समझ सकता है वह इस उपहार को ओरों को दिये बिना नहीं रह सकता। वह कृष्ण चेतना है।

एक बार हम जगते हैं तथा उस चेतना से जुड़ जाते हैं। हम उसे कभी छोड़ नही सकते। एक चरण के बाद दूसरे चरण हमें व्रज धाम, गोलोक वृन्दावन की ओर अग्रसर होना है। सभी जीवात्माओं का धर्म वही है।

अनेक पूज्य महात्मा तथा महान धर्मोपदेशक, समय समय पर आते हैं और उनका लक्ष्य हमें मिथ्या पर्यावरण से ऊपर उठाना होता है। कुछ धर्म हमें स्वर्ग को ले जाना चाहते हैं, कुछ वैकुण्ठ लोक को, तो कुछ ब्रह्मलोक को—सभी हमें एक ऊंचे धरातल पर ले जाना चाहते हैं। किन्तु अन्ततः सारे शास्त्र एवं कृष्ण के दास इस भौतिक जगत में हमको अपने जीवन का लक्ष्य बतलाने ही आते हैं। यह लक्ष्य हमारे अलौकिक प्रेमी, भगवान श्रीकृष्ण की सेवा है। जिसमें यह भाव है वह हमें निश्चित ही कृष्ण लोक से सम्बन्ध प्रदान कर सकता है। साधु का स्वभाव यही है। साधु सुख भोग नहीं चाहते अपितु वे दूसरों को सुख प्रदान करते हैं—लौकिक सुख नहीं अपितु अतीन्द्रिय आनन्द, दिव्य आह्लाद। कृष्ण लोक अथवा गोलोक वृन्दावन का वर्णन ब्रह्मसंहिता, श्रीमद्भागवत तथा अन्य शास्त्रों में बड़े सुन्दर ढंग से दिया गया है। वे हमें दिव्य ज्ञान प्रदान कर उस अलौकिक धरातल के अधिकारी सेवक बनाने हेतु प्रयत्नशील हैं।

अतः मैं आप सबसे किसी साँसारिक सुख-भोग अथवा किसी भौतिक वस्तु के आदान प्रदान हेतु नहीं आया हूँ। आप सब मेरे गुरुभाई, गुरुभगिनी एवं आध्यात्मिक सम्बन्धी हैं।

वास्तव में आत्मा एक विराट शक्ति से आती है, और हम उसके अश हैं। उस अर्थ में हम सब सम्बद्ध हैं। जब एक साधु भारत से आये और लोगों को "अमेरिका के भाइयो एवं बहनो..... कहकर सम्बोधित किया, तो उसे सुनकर हर कोई चमत्कृत हो गया। एक उच्चतर रूप में हम वास्तव में भाई बहन हैं। अपने शाश्वत रूप में—जो कि चैतन्य जीवात्मा है—हर कोई एक दूसरे से सम्बद्ध है तथा हर कोई हमारे दिव्य प्रेमी, भगवान कृष्ण से सेवा सम्बन्ध रखता है। उस अर्थ में हम सब सम्बद्ध हैं। कृष्ण चेतना की परम्परा में हमें प्रगति हेतु परस्पर सहयोग करना चाहिये और तब हम आसाना से अपने गन्तव्यकी ओर अग्रसर होंगे। शास्त्रों की यही शिक्षा है।

इस रूप में मैं आपका सहयोग चाहता हूँ। आप मुझे बड़ा प्यार दे रहे हैं, किन्तु लौकिक सुखभोग के लिये नहीं और न किसी भौतिक वस्तु के आदान-प्रदान हेतु ही। शायद आपके साहचर्य्य से मैं आप सबको अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर होने के लिये कुछ आशा बंधा सकूं। मैं बता सकता हूँ कि आपकी वास्तविक सम्पत्ति क्या है, आपकी अपनी आत्मा की सम्पदा क्या है। मुझे आपको सहायता करनी है। आप भी उस दिव्य सेवा के लिये मुझे आशा और प्रोत्साहन प्रदान कर सकते हैं। यही मेरी आशा है। इस संसार में आपके पास बहुत कुछ है किन्तु सच्ची आवश्यकता है कृष्ण चेतना की साधना का भाव। उसका अन्त नहीं है और वह निरन्तर अधिकाधिक सु दर रूप में बढ़ रहा है। आप कृपया हार्दिक शक्ति से आगे बढ़ें और आप अन्य लोगों को भी कृष्ण चेतना का उपदेश उनके लाभ हेतु दे सकते हैं। मैं उस रूप में सहायता करना चाहूँगा और यदि कृष्ण चेतना के सम्बन्ध में आप के कोई प्रश्न हैं तो उनका उत्तर देने का मैं प्रयास करूंगा।

मेरी अंग्रेजी बहुत कमजोर है इसलिये मैं कोई औपचारिक भाषण नहीं दे सकता। वैसा कर सकना मेरे लिये बड़ा कठिन है। किन्तु कृष्ण चेतना के विषय में जिज्ञासाओं का समाधान मेरे लिये बहुत आसान है। मुझे अपने श्रील गुरु महाराज तथा श्रील स्वामी महाराज से कुछ कृपा प्राप्त है और एक लम्बे समय से मैं उनके

आन्दोलन से जुड़ा हूँ। सब लोगों को उसके सम्बन्ध में बतलाना भी मेरा कर्त्तव्य है। यदि कृष्ण चेतना के सम्बन्ध में संतुष्ट अनुभव करने में आपकी सहायता कर सका, तो मैं अपनी सेवा को सार्थक समझूंगा। इसलिये यदि आपको कोई प्रश्न पूछने हैं, तो पूछें, मुझे प्रसन्नता होगी।

प्रश्न : कृष्ण चेतनाके प्रति हम एक महात्मा द्वारा आकर्षित हुये, किन्तु कभी कभी उस मार्ग पर ठीक ठीक चलना हमारे लिये आसान नहीं होता। बिना आधे रास्ते उसे छोड़ दिये अपने लक्ष्य तक अबाध रूप से यात्रा करने में क्या हमारी सहायता कर सकता है ?

श्रील गोविन्द महाराज : यह एक बड़ा सुन्दर प्रश्न है। आप के सावधानी पूर्ण प्रश्न के लिये धन्यवाद। यह केवल आपका प्रश्न नहीं, हम सबका प्रश्न है। हमने भगवान कृष्ण के चरणाविन्दों में समर्पण कर दिया तथा अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का प्रयास किया किन्तु हमारे जीवन में कई बाधायें आ रही हैं। हम कई विघ्न अनुभव कर रहे हैं। इसलिये ऐसा लग रहा है हम अपने पूरे ध्येय तक नहीं चल पायेंगे। दो पक्ष हैं : प्रथम, यदि हम कृष्ण के चरणों में पूर्ण समर्पण कर देते हैं तो कृष्ण हमारी रक्षा करेंगे। यह शत-प्रतिशत सत्य है। शास्त्रों में कहा गया है,

सकृदेव प्रपन्नोयम तवास्मीति च याचते।
अभयम् सर्वदातस्मै ददामि एतद व्रतं मम्॥

(श्रीश्री प्रपन्न-जीवनामृतम् ६.४)

भगवान रामचन्द्र ने विभीषण के लिये यह कहा था। हर कोई विभीषण को निकालना चाहता था। विभीषण रावण का भाई था तथा रावण राम का शत्रु था, इसलिये हर किसी ने सोचा कि विभीषण एक भेदिया की भांति आये होंगे। किन्तु रामचन्द्र ने कहा, "हो सकता है वह भेदिया हो, हो सकता है न हो। किन्तु एक बार जब उसने मेरा आश्रय लिया है तो मुझे उसकी रक्षा करनी है। मुझे उसको आश्वासन देना है कि वह निकाले नहीं जायेंगे।

इसलिये जब हमने शरण ली, तो हमारे भीतर कोई कमी

थी या नहीं, यह पृथक प्रश्न है। अन्यथा बीच रास्ते में हम कृष्ण चेतना को क्यों छोड़ रहे हैं ? हो सकता है बहुत से लोग इसे छोड़ दें तथा साधना बन्द कर दें अथवा उनके मार्ग में बाधायें आ जांय। किन्तु उस बाधा को दूर करने का उपाय क्या है ? वह प्रक्रिया इस प्रकार है : कृष्ण स्वयं कहते हैं,

सतां प्रसंगान् मम वीर्य संविदो भवन्ति हृत्-कर्ण-रसायनाः कथाः
तज्जोषणादाश्व-अपवर्ग-वर्त्मनि श्रद्धा-रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति
(श्रीमद्भागवत ३.२५.२५)

हमें अच्छे मित्रों एवं साहचर्य्य की आवश्यकता है, तब हम आसानी से आगे बढ़ सकेंगे। और दूसरा पक्ष यह है कि यदि हमारा समर्पण पूर्ण है तो ऊपरी स्तर से श्रद्धा आयेगी और हमारी रक्षा करेगी। यदि कोई कृष्ण के गुरु अथवा साधु रूप के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित है तो कृष्ण उसकी रक्षा अवश्य करेंगे। वे उसकी रक्षा निश्चित ही करेंगे। किन्तु कभी कभी एक पक्ष यह भी होता है कि कृष्ण उस भक्त को कब स्वीकार करेंगे अथवा वे उसके लिये कितना समय खर्च करेंगे। किन्तु उसके कारण हमें निराश नहीं होना है। जब समय आयेगा हम निश्चित ही समझ जायेंगे। हो सकता है वह काल अत्यन्त संक्षिप्त हो—ठीक हमारे सम्मुख—अथवा एक लम्बा समय हो। परन्तु काल क्या है ? हो सकता है उस काल में कुछ जन्मों का भी आवागमन हो जाय, किन्तु वह भी एक बड़ी क्षोण वस्तु है। अनन्त काल की तुलना में वह अत्यन्त नगण्य है। कृष्ण से हम आशा प्राप्त करते हैं, और यह एक सौ प्रतिशत सत्य है। किन्तु जब हम इस भौतिक जंजाल से मुक्ति की उस अवस्था की प्रतीक्षा कर रहे हैं और अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर होने के इच्छुक हैं, तो यह तब होगा जब कृष्णके भक्तों का साहचर्य्य हमें प्राप्त हो। ऐसा सत्संग हमारे मन और आत्मा को संबल प्रदान कर सकता है।

भगवान कपिलदेव ने अपनी मां देवहूति से कहा "मां आप चिन्ता न करें। आप स्त्री हैं तथा वेद नहीं पढ़ सकतीं तथा आप योग साधना आदि भी नहीं कर सकतीं, किन्तु चिन्ता न करें। मैं अपने दासों से सदा संतुष्ट हूँ जो प्रतिदिन चौबीस चण्टे मेरी सेवा

में लगे रहते हैं। आप केवल उनका सत्संग करें। उनके सत्संग द्वारा आपकी साधना सानन्द विकास करेगी।" उसका अर्थ है श्रवणम्, कीर्तनम्, वन्दनम् आदि। भगवान कहते हैं, "यदि तुम मेरे दासों से मेरे विषय में चर्चा सुनो तथा उनके सत्संग में हरे कृष्ण का जप-कीर्तन करो तथा मेरी महिमा का गान करो, तो तुम अपनी आध्यात्मिक साधना के लिये बड़ा संबल प्राप्त करोगे। तब अन्ततः तुम दृढ़ भक्ति प्राप्त करोगे तथा मेरे दिव्य रूप में तुम्हारी निष्ठा प्रगाढ़ होगी।" साधकों के लिये सच्चा साधुसग आवश्यक है।

साधु-संग दो रूपों में संभव है : शास्त्र भागवत से तथा भक्त-भागवत से। जब सच्चा साधु तथा उसका सत्संग उपलब्ध न हो—उस समय तब हम शास्त्रों से सहायता ले सकते हैं। इस युग में वह साधकों के लिये बड़ा सहायक है। हमारे गुरु महाराज तथा श्रील स्वामी महाराज दोनो ने हमारे साधनागत जीवन की शिक्षा हेतु अनेक पवित्र ग्रन्थ प्रदान किये हैं। यदि हम उन ग्रन्थों को पढ़ें तो हमें बड़ी शक्ति तथा खुराक मिलेगी तथा हम अपने गन्तव्य की ओर सुखपूर्पक अग्रसर हो सकेंगे।

इसलिये यदि हमारे सामने एक सजीव साधु विद्यमान न हो तो हमें उसकी पुस्तकें पढ़नी चाहिये। दूसरी बात जो हम कर सकते हैं वह है कृष्ण से सीधा सम्बन्ध। ऐसा उनके पवित्र नाम के जप द्वारा हो सकता है। वह नाम है हरे कृष्ण महामन्त्र। यह विधि केवल इस कलियुग के लिये है। यह अन्य युगों के लिये नहीं है। कलियुग के बद्ध जीवों को यह बड़ा सुन्दर सुअवसर देता है। महा-मन्त्र के रूप में कृष्ण स्वयं प्रकट होते हैं। कृष्ण और हरे कृष्ण महामन्त्र अभिन्न हैं। सारे शास्त्र यही शिक्षा देते हैं।

नाम और व्यक्ति एक है। दोनों अतिप्राकृत तथा सनातन हैं। यदि हम पवित्र नाम का जप श्रद्धा और भक्ति के साथ बिना अपराध के करते हैं, तो हमें कृष्ण का प्रत्यक्ष सानिध्य प्राप्त होगा। कृष्ण के प्रति हमारा सेवा भाव भी दृढ़ होगा।

इस प्रकार ये तीन विधियां तुरन्त हमारे समक्ष हैं। यदि हम तीनों प्राप्त कर सके तो बहुत अच्छा है परन्तु हरे कृष्ण महामन्त्र का

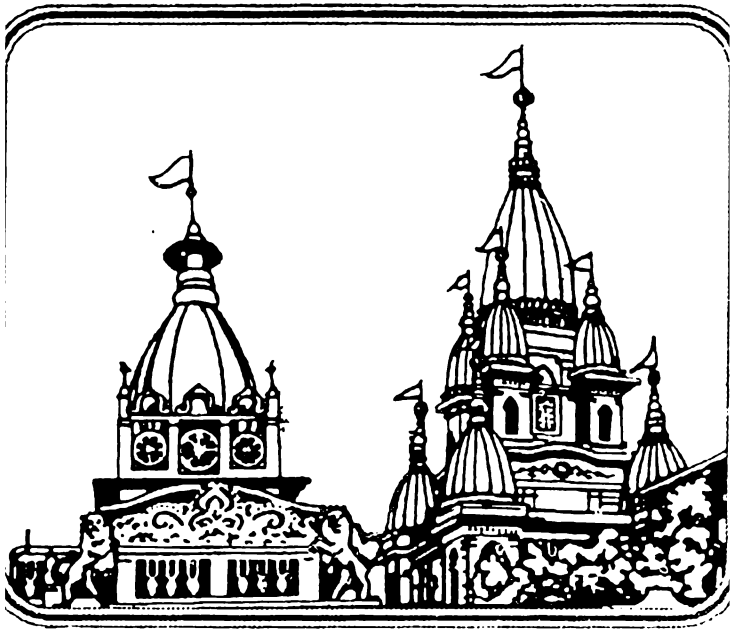

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य
न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य
तस्यैषात्मा वृणुते तनू स्वाम्

आत्मा की प्राप्ति प्रवचन से नहीं होती, न ही अधिक
बुद्धि से अथवा वेदों के व्यापक ज्ञान से
ही होती है। वह केवल उसे प्राप्त
होती है, जिसे वह स्वयं
वरणकर ले। ऐसे
व्यक्ति को अपना
रूप स्वयं
प्रकाशित
कर
देती
है